वर्ष १
अंक ४
मई १९६

सत्य साहित्य

वैद्य धर्मदत्त
स्मृति संग्रह

जय राम जय राम

मूल्य २५ न० पै०

सम्पादक
भगवानदास कत्याल

सहायक सम्पादक
अमीरचन्द्र शास्त्री

D
८७

इस अंक में पढ़िये

		पृष्ठ संख्या
१. भजन	(भजन संग्रह से)	१
२. स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के साहित्य और सिद्धान्त (आरती)	श्री अमीरचन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य	२
३. सत्य-वचन-चयनिका	श्री मूलचन्द्र गुप्त, गवालियर	७
४. अमृतवाणी (द्विपदी व्याख्या)	श्री अमीरचन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य	८
५. "कृपा योग्य"	श्री हरि नारायण	११
६. आध्यात्मिक तप और लोक परलोक का साथी	श्री मूलचन्द्र जी गुप्त	१२
७. रामायणसार की शिक्षाएँ	श्री अमीरचन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य	१३
८. एक स्वप्न, एक विनय	सहायक सम्पादक	१८
९. प्रार्थना और उसका प्रभाव	(एक व्याख्यात्मक लेख)	१९
१०. दो गीत (रामायणसार अयोध्याकाण्ड में से)		२४
११. मेरे कुछ संस्मरण	ठेकेदार चौ० मेहरसिंह	२५
१ . स्थितप्रज्ञ के लक्षण	(एक विद्यार्थी)	२८
१३. सत्य साहित्य के उद्देश्य व नियम		(कवर ३)
१४. महाराज जी की प्रकाशित पुस्तकें		(कवर ४)

श्रीराम

सत्य साहित्य

स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के साहित्य और सिद्धान्तों का
संदेशवाहक मासिक पत्र

"सत्यमय साहित्य का स्वाध्याय करते लोक।
तो उन्हें वे मन्त्र मिलते, जो कि हरते शोक॥"

वर्ष १ | दिल्ली, मई १९६१ | अङ्क ४

भजन

जपो जी नित्य राम राम श्री राम राम।

अशरण शरण अघहरण चरण में, मिले शान्ति विश्राम॥१॥
चिन्तन ध्यान जाप का करना, गाना हरि गुण ग्राम।
सुरति शब्द संयोग रूप यह, सहज योग है नाम॥२॥
राम राम मय नाद मधुरतम, जब हो विना विराम।
तब समझो कर निश्चय पूर्ण, सुधर गये सब काम॥३॥
राम शब्द जब चले निरन्तर, भीतर आठों याम।
'सत्य' समझिये फले मनोरथ, मिला परम पद धाम॥४॥

जपो जी नित्य राम राम श्री राम राम।

(भजन संग्रह में से)

स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के

साहित्य और सिद्धान्त

—(आरती)—

(विद्याभास्कर,कविरत्न श्री अमीरचन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य)

पूर्व के तीन अङ्कों में स्वामी जी महाराज के भक्ति प्रकाश के अन्तर्गत प्रथम खण्ड शब्द प्रकाश के तीन प्रकरणों पर विचार किया जा चुका है। मङ्गलाचार, नमस्कार और पूजापाठ की व्याख्या की जा चुकी है। इस अङ्क में आरती प्रकरण पर विचार करेंगे।

जिस प्रकार नमस्कार भी मङ्गलाचार का एक अंग है किन्तु पूज्य स्वामी जी ने उसे मङ्गलाचार का प्रधान अङ्ग मानकर उसका अलग-से वर्णन किया है। वैसे ही आरती भी पूजापाठ का एक अङ्ग है किन्तु महाराज जी ने उसे पूजापाठ का प्रधान अङ्ग मान कर उसका अलग-से निरूपण किया है। पूजापाठ के

'पूजन तेरा मैं करूँ, ले श्रद्धामय थाल।
दीपक धर कर ध्यान का, अक्षत प्रेम रसाल।।'

इस दोहे के द्वारा भी आरती की एक पद्धति का निर्देश किया गया है। परन्तु 'आरती' प्रकरण में मुख्य रूप से आरती की ही चर्चा की गई है।

परम देव मैं आरती, करूँ प्रेम के साथ।
श्रद्धा भक्ति धूप दीप, ले कर अपने हाथ।।

इस पहले दोहे में मानसपूजा की मानस आरती का स्वरूप स्पष्ट बतलाते हैं। 'हे परमदेव, मैं प्रेम के साथ अपने हाथ श्रद्धा और भक्तिरूपी धूप तथा दीप लेकर आरती करूँ।' यहाँ श्रद्धा को धूप और भक्ति को दीप बताया गया है। श्री हित हरिवंश महाप्रभु ने—

आरती कीजै श्याम सुन्दर की,
नन्द के नन्दन राधिका वर की।
भक्ति कर दीप प्रेम कर बाती,
साधु संगति करि अनुदिन राती।
आरति ब्रज युवति यूथ मन भावे,
श्याम कथा हित हरिवंश गावें।।

श्यामसुन्दर श्री कृष्ण की इस आरती में भक्ति को दीप और प्रेम को बत्ती कहा है। यहाँ साधुसंगति के लिये कोई समान वस्तु नहीं कही है किन्तु स्वयं ही साधुसंगति घृत सिद्ध होती है, क्यों कि जितनी अधिक साधुसंगति होगी, उतनी ही देर भक्ति का दीप और प्रेम की बत्ती अधिक जलती रहेगी। इसी प्रकार इस दोहे में महाराज जी ने भी श्रद्धा को धूप और भक्ति को दीप कहा है। फिर

'भावमयी यह आरती, करती पावन गात।
मन मन्दिर में सुमधुर, सायं हो प्रभात।।'

यह भावमयी आरती अर्थात् जिसमें श्रद्धा की धूप और भक्ति का दीप जलाकर प्रेम के साथ आरती की जाती है, ऐसी आरती शरीर को पवित्र कर देती है। यह अति मधुर आरती सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय मन मन्दिर में की जाती है। श्रद्धा का धूप और भक्ति का दीप मन के ही मन्दिर में जलाया जाता है। यद्यपि इसका कोई निश्चित समय नहीं है, तथापि स्वभावतः प्रातःकाल और सायंकाल के समय में

चित्तवृत्तियों में एकाग्रता रहती है, अतः वही समय मानस आरती का भी है। आरती के समय अनेक प्रकार के मंगलमय बाजे बजाने की प्रथा है, उस पर महाराज जी कहते हैं कि

"घंटे बजें सुगीत के, मृदु सुरों के साज।
वीणा मधुर सितार के, नाद रिझाने काज॥"

प्रभु को रिझाने के लिये सुन्दर गीतों के घंटे तथा नाद की वीणा और सितार मधुर और कोमल स्वरों के साज से बजें। यहाँ प्रभु की उपासना में वैखरी वाणी से गाए गए प्रभु के सुन्दर गीतों को तो घंटे की ध्वनि की उपमा दी है। किन्तु परावाणी के नाद को मधुर वीणा और मधुर सितार कहा गया है। परावाणी के नाद में केवल मन और प्राण का सम्बन्ध रहता है, मन की वीणा और प्राणों की सितार बजा करती है। वैखरी वाणी में ध्वनि होती है, प्रतिध्वनि होती है अतः वह घंटों के समान बजती है। दोनों ही वाणियाँ प्रेम के कारण कोमल और मधुर स्वरों के साज से सजी हुई रहती हैं। फिर

"नाना वाद्य सुहावने, जय जय के शुभ नाद।
गायन हरिगुण वाद का, मन के हरे विषाद॥"

प्रेम के उद्रेक के कारण (प्रेम उमड़ पड़ने से) जो बारम्बार जय जयकार के मंगलमय नारे लग रहे हैं, वे अन्य अनेक प्रकार के मनोहर बाजे हैं, इन बाजों के लय ताल पर जो हरिगुणानुवाद के गीत गाये जाते हैं, वे मन का सब विषाद (सारा दुःख) हर लेते हैं। इस प्रकार पहले और दूसरे दोहे में तो मानस आरती का वर्णन किया तथा तीसरे और चौथे दोहे में बाहरी और भीतरी नादों को नाना प्रकार के बाजे बताया। अब बाहरी नाद जो सुन्दर गीतों के रूप में या जय जयकार के नारे के रूप में अथवा प्रभु के गुणानुवाद के रूप में प्रकट हुआ, उसका विशेषरूप से वर्णन करते हैं—

महा मृदु संगीत से, मीठे मोहक राग।
परम प्रभु की आरती, गाऊँ कर अनुराग॥

"प्रभु के चरणों में अत्यन्त अनुराग (प्रेम) करके—मैं अत्यन्त कोमल संगीत के ढंग से मीठे और मन को मोहित करने वाले रागों द्वारा परम प्रभु की आरती गाऊँ।" इसमें सर्व प्रथम अनुराग या प्रेम का होना आवश्क बताया गया है, क्योंकि प्रेम से तो रोना भी गाना हो जाता है और विना प्रेम के गाना भी रोना हो जाता है। तभी तो श्री कृष्ण के वियोग में रोती हुई गोपियों के लिये श्री शुकदेव जी महाराज ने कहा कि 'रुरुदुः सुस्वरं स्त्रियः—"वे गोप-वधुएँ मधुर स्वर से रोईं" प्रेम के कारण उनके रोने में भी मधुर स्वर आ गया। प्रभु के चरणों में अनुराग या प्रेम के साथ जो संगीत किया जाएगा वह महा मृदु अत्यन्त कोमल होगा, उसमें जो राग रागिणियाँ प्रकट होंगी वे मीठी और मोहक होंगी, उन मीठी और मोहक रागिणियों में गाई गई आरती ही प्रभु को रिझा सकेगी। क्योंकि उसमें प्रेम होगा और

'रामहिं केवल प्रेम पियारा।
जानि लेहु जो जाननिहारा॥'

के द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि प्रभु को केवल प्रेम ही रिझा सकता है। अब भीतरी नाद का विशेष रूप से व्याख्यान करते हैं—

"लोक अलख की आरती,
विविध अनाहद भेद।
भीतर के सब भेद हैं,
हरते मानस खेद॥"

जो परमात्मा लोक में सर्वत्र व्यापक होता हुआ भी "अलख" है, अलक्ष्य है, अगोचर है, दिखाई नहीं देता, अनुभव में नहीं आता। उसकी आरती अनेक प्रकार के अनाहद नादों के भेद से की जाती है। ये भीतर के अनाहद नादों के भेद मन का सभी खेद हर लेते हैं, बाहर जितने बाजे बजते हैं, वे सब आहत-ताडित होने पर ही अर्थात् पीटे जाने पर ही बजते हैं, कोई दण्ड से पीटे जाते हैं, कोई ताली से, कोई श्वास से। मुख से भी जो कुछ बोला जाता है, वह वायु के आघातों से ही बोला जाता है। वायु के आघातों के ही कारण बोले जाने वाले अक्षरों के उच्चारण-स्थान अलग अलग बताये जाते हैं, इस लिये बाहरी नाद या ध्वनियाँ सभी आहत हैं। भीतर के नाद अनाहत होते हैं अर्थात् विना किसी ताडना या पीटने के ही भीतर नाद हुआ करता है, इसी लिए उसे अनाहत या अनाहद अथवा अनहद नाद कहा जाता है। यह हृदय की वाणी होने कारण मन के सभी खेदों को दूर कर देती हैं। हृदय के समीप जहाँ यह भीतरी नाद होता है, उसे अनाहत चक्र भी इसी लिये कहते हैं कि वहां विना किसी आघात के नाद हुआ करता है। इस मानस आरती का मनमन्दिर में जो अलौकिक प्रकाश होता है, उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि

"महा ज्योति झलमल करे,
मनमन्दिर के देश।
जगमगाता तेज वहाँ,
देवे हर्ष विशेष॥
हो प्रकाश सुखकर अति,
मनमन्दिर के बीच।
चमके सूर्य तेज सम,
दीखे आँखें मींच॥
शशी सूर्य के दीप है,
ज्योति ग्रहगण जान।
तारागण नभ थाल में,
मोती भरे महान॥
चमचम चमके तेज शुभ,
भीतर के आकाश।
यही आरती ईश की,
करती विघ्नविनाश॥"

इस मानस आरती से मनमन्दिर के देश में महाज्योति-दिव्य प्रकाश झलमल करने लगता है, वहां जगमगाता हुआ इस आरती का तेज बहुत आनन्द देता है। मनमन्दिर के अन्दर जो अत्यन्त सुख दायक प्रकाश होता है वह सूर्य के तेज के समान चमकता है, किन्तु आकाश के थाल में सूर्य और चन्द्र दीप की तरह प्रकाश करते हैं, ग्रहगण उन दीपकों की ज्योति से प्रतीत होते है और तारागण मोतियों की तरह भरे हुए दिखाई देते हैं। वैसे ही भीतर के आकाश में भी यह शुभ तेज चमचम चमकता है। ईश्वर की यही मानस आरती सब विघ्नों का विनाश करती है।

अब आरती के अनेक रूपों का वर्णन करते हैं, सर्व प्रथम प्रभु की लीला भी प्रभु की आरती है, यह बताते हैं-

लीला तेरी हे हरे, आरती है सुखरूप।
अद्भुत रचना जगत् की, सुन्दर सर्वसुरूप॥

हे हरि, तेरी लीला भी एक सुख रूप आरती है। जिस लीला के द्वारा जगत् की यह अति सुन्दर और अनेक रूपों वाली अद्भुत रचना की गई है। आरती प्रकाश रूप होने के कारण बड़ी

सुहावनी होती है, प्रभु की लीला भी अनेक रूपों में सुन्दर जगत् का विस्तार करने के कारण बड़ी सुहावनी है अत एव उसे आरती का रूपक दिया गया है।

अब भक्तों के हृदय में प्रभु की शुभ आरती का दर्शन करते हुए कहते हैं कि

"बसे मधुरता ही सदा, हो शुभारती आप।
जिस घर में श्रीरामका, होवे सिमरन जाप॥"
"भय भञ्जन की आरती, करिए मंगल मान।
परम पुरुष की आरती, करिए करके ध्यान॥"

जिस हृदय में श्रीराम के अलौकिक गुणों का स्मरण होता है और दिव्य नाम का जाप होता है उस हृदय में सदा मधुरता ही बसा करती है इस लिये वहाँ अपने आप ही शुभ आरती होती है। यह अवस्था किसी किसी भाग्यवान् भक्त को किस साधन से प्राप्त होती है, वह साधन बताते हैं—

"भय भञ्जन की आरती, करिए मंगल मान।
परम पुरुष की आरती, करिए करके ध्यान॥

"परम मंगल करने वाली है ऐसा मान कर भय भंजन (भयों का निवारण करने वाले) भगवान् की आरती कीजिये, मन में उस परम पुरुष का ध्यान करके उनकी आरती कीजिये।" यहां मानकर और ध्यान कर आरती कीजिये यह दो बातें कही गई हैं इनका तात्पर्य यह है कि प्रथम तो मन में विश्वास जमाइये, श्रद्धा लाइये कि भगवान् भय-भञ्जन हैं, उनकी आरती से हमारा मंगल ही मंगल होगा और दूसरे मन को एकाग्र करके उनके चरणों में लगा दीजिये, उनसे प्रीति कीजिये। इस प्रकार की प्रतीति और प्रीति से भक्त के मन की ऐसी दिव्य दशा हो जायेगी कि उसका स्मरण अखण्ड बना रहेगा, उसका जाप अखण्ड चलता रहेगा और उसके हृदय में अपने आप ही भगवान् की आरती होती रहेगी। भक्त के मन में अपने आप होते रहने वाली आरतियों का विस्तृत वर्णन करते हैं—

"भक्तिभाव की आरती,
शब्द ध्यान का मेल।
जप सिमरन की आरती,
भीतर के सब खेल॥
दान पुण्य शुभ कर्म सब,
सेवा भाव विशेष॥
आरती है तेरी हरि,
करती पाप निश्शेष॥
आरती रति आनन्द की,
मोद सुमति की खान।
तेरी हे परमात्मन्,
देती मङ्गल दान॥"

जहाँ शब्द-नाम और ध्यान-रूप का मेल होता है उसे भक्ति भाव की आरती कहते हैं। जहाँ भीतर ही भीतर सब खेल होते रहते हैं। नाम के जाप में प्रभु के नामों के अर्थों का अनुसन्धान होते रहने से अनेकानेक सभी दान पुण्य सभी शुभ कर्म विशेष करके सेवा भाव भी हरि, तेरी आरती है जो जीव के सभी पापों को समाप्त कर देती है। प्रेमानन्द की आरती तो मोद-हर्ष और सुमति-सुबुद्धि की खान है, हे परमात्मा, तेरी यह प्रेमानन्दरूपा आरती सभी प्रकार के मङ्गल दान देती है।

परमात्मा की आरती क्या क्या मङ्गल दान देती है, उसका वर्णन करते हैं—

आरती में मन मोद से,
सहित सुभाव विचार ।
नाचे तेरी जोत लख,
जय जय राम पुकार ।।

हे प्रभु, तेरी आरती में भक्त का मन अपने सुन्दर भावों और उत्तम विचारों के साथ तेरी ज्योति का दर्शन करके आनन्द से नाच उठता है और 'जय जय राम' 'यह पुकार उठता है ।" इसके द्वारा आरती से भक्त के मन में मोद (आनन्द) सुभाव (सुन्दर भाव) विचार (उत्तम विचार) का जाग्रत होना तथा प्रभु की दिव्य ज्योति का दर्शन करना, नाच उठना, जय जय राम पुकारने लगना आदि अनेक मंगलों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है । 'जय जय राम, पुकारने के साथ साथ वह अनेक प्रकार से जय जयकार कहने लगता है, वही लिखते हैं—

जय हो तेरी देव जी,
तीन लोक त्रिकाल ।
जय जय हो जगत के प्रभु
सबके देव दयाल ।।
जय जय हो सब जनों में,
सब मन में जयघोष ।
दशदिश में जय नाद हो,
दाता परम सुतोष ।।
आत्मा मेरा जय कहे,
मन बोले जगदीश ।
रोम रोम प्रफुल्ल हो,
जय बोले जगदीश ।।

प्रभु की आरती से भक्त का मन प्रफुल्लित हो कर पुकारने लगता है। हे देव जी, तीनों लोकों और तीनों कालों में तेरी जय हो, हे जग के प्रभु, हे सबके दयालु देव, जय हो जय हो । सब जनों में जय जयकार हो, सब मनों में जय जयकार हो । दसों दिशाओं में जय जयकार हो, जो परम सन्तोष को देने वाला है । मेरी आत्मा जयकारा बोले हे ईश, मेरा मन जयकारा बोले । हे जगदीश, मेरा रोम रोम प्रफुल्लित हो हो कर जय जयकार बोले ।"

इस प्रकार प्रभु की आरती में जो भक्त जन के लिये मंगल विस्तार करने की शक्ति है उसका वर्णन करते करते स्वामी जी महाराज ऐसे तन्मय हो गए कि प्रभु को ही सम्बोधन करके उनकी जय जय बुलाने लगे । अथवा इन तीनों दोहों को आरती के गीत के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है ।

"जय हो तेरी देव जी,
जय हो तेरी देव जी ।
तीन लोक त्रैकाल,
स्वामी तीन लोक त्रैकाल ।।
जय जय हो जग के प्रभु,
जय जय हो जग के प्रभु ।।
सबके देव दयाल,
स्वामी सबके देव दयाल ।।

इत्यादि रूपों में संगीतशास्त्रज्ञों द्वारा इन दोहों की आरती के गीत के अनुरूप पदयोजना और स्वरयोजना कराई जा सकती है ।

सत्य-वचन-चयनिका

(श्री मूलचन्द्र गुप्त, गवालियर)

१. नाम आराधन एक किस्म की आध्यात्मिक चिकित्सा है।

२. परमार्थ यदि व्यवहार में न लाया जाय तो लाभ ही क्या ?

३. आचार ही उत्कृष्ट धर्म है।

४. सेवा घर का शृंगार और सत्संग की शोभा है।

५. पराई गंदगी को जीभ से धोना अच्छी बात नहीं।

६. वाणी का पालन करने से वाणी बलवती होती है।

७. धर्म जीवन-तत्व-विज्ञान है।

८. धन की पवित्रता सब पवित्रताओं से बड़ी है।

९. झूठी सिफारिश मत करो।

१०. जप करना आध्यात्मिक तप है।

११. राम नाम के जपने वाले काल को भी कत्ल कर डालते हैं।

१२. राम मन्दिर में जाने की कोई सीढ़ी है तो वह राम नाम है।

१३. जो जन परमार्थ को व्यवहार में नहीं लाते, जो अपने जीवन में नहीं बसाते, वह अपने को ही नहीं भगवान को भी धोखा देते हैं।

१४. तर्क के घोड़े के पैर में काँटा होता है जो कभी टिकता नहीं है।

१५, कीर्तन इतने मधुर स्वर से और भाव पूर्ण होवे कि ढोलक में से भी 'राम राम' शब्द निकलने लगे।

(पूज्य महाराज जी के प्रवचनों में से)

१६. जिस कीर्तन में तन रोमांचित हो आवे, प्रेमाश्रु बहने लगें, तथा आवेश आजाय, वह कीर्तन सारे तन को, मनको, स्नायु को और सारे मज्जाजाल को प्रभावित कर देता है।

१७. जो लोग भक्ति से शून्य छोकरों से कीर्तन कराया करते हैं वे तो भक्ति धर्म को काला कलंक ही लगाते हैं।

१८. खोटे संस्कार, संचित कर्म राम भक्ति से भस्म भी हो जाया करते हैं। जप, तप, आराधन से संचित कर्मों का सर्वनाश तक हो जाया करता है।

(भक्ति-प्रकाश में से)

१९. किसी का आप गिरना बुरा है, तो अन्य जन को धक्का देकर गिराना भी बुरा है।

२०. पुष्प बाटिका में विचरते हुए एक सभ्य बिचारक जन के लिए सारा समय तीखे कांटों को निरखते रहने में बिताना किसी प्रकार भी भद्र नहीं है, उसको तो पत्रित पुष्पित, लहलाती बेलों को निहारने विकसित कुसुमों को निरखने और कोमल कलियों को अवलोकन करने से आमोद मनाना चाहिए।

(प्रार्थना से)

अमृतवाणी (द्विपदी व्याख्या)

(कविरत्न, विद्याभास्कर. अमीरचन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य)

पूर्व अङ्कों में अमृतवाणी के छः पदों की व्याख्या क्रमशः प्रकाशित हो चुकी है। यहाँ सातवें और आठवें पद की व्याख्या करते हैं। पूर्व पदों में रामनाम के जाप, पाठ, उच्चारण, गान, व्याख्यान का माहात्म्य वर्णन करके उस रसना और कर्म की महिमा गाई गई है जिनके द्वारा नाम कमाई की जाती है। सातवें पद में रामनाम के ध्यान का फल वर्णन करते हैं।

"अमृत राम नाम जो ही ध्यावे,
अमृत पद सो ही जन पावे।
राम नाम अमृतरस सार,
देता परम आनन्द अपार॥"

"जो राम नामरूपी अमृत का ध्यान करता है, वह जन (साधक पुरुष) अमृतपद प्राप्त करता है क्योंकि राम नाम अमृत रस का सार है, तभी तो वह परम अपार आनन्द देता है।"

यहां पर कोई यह प्रश्न कर सकता है कि राम नाम का जाप भी हो सकता है, पाठ भी। उच्चारण भी हो सकता है, गान भी। व्याख्यान भी हो सकता है, अलाप भी। रामनामरूपी अमृत की अर्चा भी हो सकती है, चर्चा भी। किन्तु ध्यान नहीं हो सकता। क्योंकि ध्यान तो नामी का हुआ करता है। फिर यहां पर "अमृत रामनाम जो ही ध्यावे" क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥

श्रीमद्भवदगीता के इस सुवचन के अनुसार ज्ञानियों की उपासना के भी दो प्रकार कहे गये हैं एकत्व से और पृथकत्व से। एकत्व से उपासना में नाम और नामी में कोई भेद नहीं होता। पृथकत्व से उपासना में नाम और नामी में भेद रहता है। इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने भी दृष्टान्त देकर बताया है।

"गिरा अरथ जल बीचि सम,
कहियत भिन्न न भिन्न।"

नाम और नामी के समान तथा जल और तरङ्ग के समान सीताराम दोनों रूप भिन्न कहे जाते हैं परन्तु वास्तव में भिन्न नहीं है।

पूज्य स्वामी जी महाराज की उपासना अभेद की या एकत्व की उपासना है, इस उपासना में नाम और नामी में कोई भेद नहीं है। भक्ति प्रकाश शब्द प्रकाश के नाम महिमा प्रकरण में—

नाम-धाम भी एक है, नाम सुनामी एक।
वाच्यवाचक एक है, यही नाम में टेक॥

इत्यादि सूक्तियों द्वारा महाराज जी ने यही सिद्धान्त स्पष्ट किया है। अतः यहाँ नाम गेय या ज्ञेय हैं और नामी ध्येय है ऐसा भेद नहीं किया जाता। यहाँ तो नाम और नामी दोनों ही गेय भी हैं, ज्ञेय भी हैं और ध्येय भी हैं। अतः अमृत रामनाम जो ही ध्यावे" अर्थात् रामनाम रूपी अमृत का जो ध्यान करता है।" अमृतपद सोही जन पावै" वही साधक पुरुष अमृतपद प्राप्त करता है। यह ठीक ही कहा गया है। नाम के आश्रय से परमपद की प्राप्ति कैसे होती है इसपर महाराज जी ने लिखा है कि

नाम डोर को पकड़कर, जाय सकल नभ भेद।
पाकर पद निर्वाण को, सर्व बन्ध को छेद।

नाम की डोर को पकड़कर सम्पूर्ण आकाश या उपाधि मण्डल को भेदन करके जब कोई निर्वाणपद को प्राप्त कर लेता है तब उसके सभी बन्धन छिन्न हो जाते हैं। आकाश या उपाधि मण्डल के भेदन का वर्णन वेदों में भी इस प्रकार किया गया है—

ओम् पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्॥

"मैं भूलोक से अन्तरिक्ष लोक में आरूढ हो गया और अन्तरिक्षलोक से द्युलोक में आरूढ़ हुआ। द्युलोक में स्वर्ग के पृष्ठतल पर से मैं उस सुखमय ज्योति में चला गया।" इसी आरोहणक्रम को ध्यान में रखकर महाराज जी ने लिखा है कि "जाय सकल नभभेद।" सकल नभ' शब्द के द्वारा अन्तरिक्षलोक' द्युलोक और स्वर्गलोक का पृष्ठतल आदि सभी स्थलों का संग्रह होता है।' नाम की डोर' को पकड़ कर सम्पूर्ण आकाश-मण्डल को भेद जाने का यह भी तात्पर्य है कि नाम ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा साधक उस परम ध्येय को प्राप्त कर पाता है, उधर तो यह नाम की डोर नामी के साथ बँधी रहती है और इधर साधक के साथ नाम का अखण्ड चिन्तन उसे डोर बना देता है और इस डोर को पकड़ कर साधक साध्य के पास——अपने आराध्य के पास——पहुँच जाता है। नाम को डोर की भाँति अखण्ड बनाए रखने के लिये नाम का ध्यान लगाया जाता है अतएव कहा गया कि जो साधक रामनाम रूपी अमृत का ध्यान करता है, वह अमृत पद प्राप्त करता है।

रामनाम रूपी अमृत के ध्यान से अमृत पद की प्राप्ति होने का रहस्य यह है कि "रामनाम अमृतरस सार" राम नाम अमृत रस का सार है। समुद्र मन्थन के द्वारा देवताओं ने अमृत प्राप्त किया होगा। किन्तु विद्वानों ने वेदरूपी समुद्र के मन्थन द्वारा परमात्मा के नाम रूपी अमृत को तो अवश्य प्राप्त किया है। उस परमात्मा के अनन्त नाम अमृत रूप है। उन नामों में से ओम् या प्रणव अमृतरस है, उन सभी नामों का रस रूप है।

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति,
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।"

इत्यादि मन्त्रों में "उन असंख्य नामों का एक ही नामी है, उन अनन्त वाचकों का एक ही वाच्य है" यही रहस्य बताया गया है।" नूयते स्तूयतेऽनेनेति नवः" जिसके द्वारा नुति या स्तुति की जाए उसे नव कहते हैं इसके अनुसार नाम को नव कहा जाता है तथा प्रकृष्ट या श्रेष्ठ नव को प्रणव कहते हैं, अतः 'ओम् 'यह नाम प्रणव या श्रेष्ठ नाम कहा गया है। ओम् की चर्चा करते हुए छान्दोग्योपनिषद् में

'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते'

इत्यादि सुवचनों द्वारा प्रणव को धनु, आत्मा को बाण और ब्रह्म को लक्ष्य बता कर ॐ लिखने के एक विशेष प्रकार पर भी प्रकाश डाला गया है। } यह धनुष है-यह बाण हैं और० यह लक्ष्य है, लक्ष्य का नाम ˘ यह है ˘ इस चिन्ह का गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने रहस्य बताया है कि

"एक छत्र एक मुकुटमणि,
सब वरणन पर जोय।"

एक अक्षर 'र्' तो सब अक्षरों के सिर पर छत्र बन कर रहता है और एक अक्षर 'म्' सब अक्षरों के सिरपर–मुकुटमणि बनकर विराजता है यही र् और म् ॐ के सिर पर भी छत्र और मुकुटमणि के रूप में लिखा गया हैं अतः इस 'राम' नाम को 'अमृतरस ॐ का भी सार कहा गया है। क्योंकि रामनाम अमृतरस का भी सार है अतः वह परम अपार आनन्द देता है--" देता परम आनन्द अपार।" पञ्चदशी आदि वेदान्त ग्रन्थों में योगानन्द, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषयानन्द आदि ब्रह्मानन्द के अनेक रूप लिखे गये हैं, किन्तु राम नाम रूपी अमृतरस के सार द्वारा इन सबसे विलक्षण परम और अपार आनन्द प्राप्त होता है, अतः कहा गया है कि 'देता परम आनन्द अपार।"

इस प्रकार राम नाम की महिमा का वर्णन करके मन को उपदेश देते हैं कि

"राम राम जप हे मना,
अमृत वाणी मान।
राम नाम में राम को,
सदा विराजित जान॥"

"हे मेरे मन, रामनाम जप। रामनाम को अमृतवाणी मान। रामनाम में राम को सदा विराजमान समझ।"

सन्तों का स्वभाव होता हैं कि वे अपने ही मन को उपदेश दिया करते हैं। अपने मन को उपदेश देने के द्वारा ही वे सभी प्रेमियों को सन्मार्ग का निर्देश कर दिया करते हैं। दूसरी बात यह है कि उनका मन विश्व के मन के साथ एकाकार हुआ रहता है वे ऐसा मानते हैं कि सभी के मन हमारे मन के साथ मिलकर एकाकार हुए हुए हैं अतः वे दूसरों को जो उपदेश देना चाहते हैं वह अपने मन को ही सम्बोधन करके देते हैं। हे मेरे मन, राम नाम का जाप कर। सन्तों का मन तो सदा ही श्वास श्वास, पलपल में रामनाम का जाप किया करता है, तब जो मन ऐसा नहीं करते उनको ही इस प्रकार हित का उपदेश देते हुए कहा जाता है कि राम नाम को अमृतवाणी मानो। रामनाम अमृतवाणी किस प्रकार है यह पहले पद की व्याख्या में समझाया जा चुका है। 'राम नाम में राम नामी को सदा विरामान समझो इस कथन द्वारा रामनामी से मिलने का सबसे सरल उपाय--सबसे उत्तम साधन--राम नाम ही है यह निश्चय कराया गया है।

★

"कृपा योग"

(हरि नारायण)

पुरातन ग्रन्थों में प्रजापति के दो पुत्र सुर व असुर नाम से विख्यात थे। मनुष्य शरीर में भी इसी प्रकार दो तरह की वृत्तियां दैवी तथा आसुरी बतलाई गई हैं। सुर भगवान की आस्था में पूर्ण विश्वास रखते हैं और असुर उनके विपरीत अपने को ही कर्त्ता धर्ता मानते हैं। आदि काल से ऋषि मुनि सन्त महात्मा पीर पैगम्बर भगवान की आस्था के साक्षी होते आये हैं और यह परम्परा जब तक विश्व है, जारी ही रहेगी। अनुमान से भी एक संचालक नियामक उत्पत्तिकर्त्ता तथा चयोपचय कर्त्ता शक्ति का होना निश्चित ही है। जब छोटी से छोटी वस्तु जिसको मनुष्य ने सामने रक्खा है, किसी के बनाये बगैर नहीं बनी है, तब इतना बड़ा विश्व जो कतिपय नियमों से बंधा हुआ चल रहा है क्या किसी ऐसी महत शक्ति के बगैर सरूप हो सकता है। यह मान लेने पर कि विश्व का संचालन एक अद्वितीय शक्तिमान सत्ता के नियन्त्रण में चल रहा है मनुष्य के लिये यह आवश्यक है कि वह उसके साथ एकी-भूत होकर ही सुचारुरूप से संसार में विचर सकता है। ऐसा करने के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि शरीरस्थ आत्मा अपने को सीमित शक्तिमान् अनुभव करे और उस महान शक्ति से अपना किसी तरह सम्पर्क पैदा करे ताकि उनकी महती शक्तियों से अपने आपको व संसार को लाभ पहुँचा सके। परम्परा से ऐसे महान आत्मा पुरुष सतपुरुष सतगुरु होते आये हैं जो उस महत शक्ति से अपने सम्पर्क में आये हुए शिष्यों को जोड़ते रहे हैं। यह ही अध्यात्मिक जीवन की मार्मिक कड़ी है। ऐसी ही क्रिया को भगवत कृपा Grace of God रहमत इलाही आदि नामो से ग्रन्थों में और मतों में पुकारा गया है लेकिन कहीं भी इसको साकार रूप देकर भली प्रकार दिखलाया नहीं गया। वैसे तो वायु जल तथा अन्य अन्य पदार्थ जो हर प्राणी को हर समय पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हैं वे सब भगवान की कृपा ही है परन्तु एक विशेष कृपा है जो प्राणी को सतपुरुष के संयोग से और भगवान की अकारण करुणा से ही प्राप्त होती है। श्री गुरु महाराज स्वामी सत्यानन्द जी महाराज जी ने असीम अनुकम्पा करके इस युग में इसका पूर्ण सत्य प्रदर्शन किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में भगवान को कृपास्वरूप वर्णन किया है और "राम कृपा अवतरण" के पद्य संग्रह में इसका पूर्ण रूप से खोल कर अनुभव दर्शाया है। मेरे विचार में उनका मार्ग प्रदर्शन कृपा 'योग' के नाम से सरलता से समझ में आ सकता है। जब वह किसी प्राणी को दीक्षा देते थे तब वह इस बात का संकेत से वर्णन भी करते थे कि हम तो उनका उद्बोधन करके ही तार जोड़ते हैं। जब कभी स्वास्थ्य ठीक नहीं होता था व मानसिक प्रक्रिया ठीक नहीं होती थी वह किसी को चरणों में नहीं बिठाते थे। उनके शिष्यगणों को भली प्रकार विदित है कि किस तरह से अनायास ही अभिव्यक्तियां व अनुभव कई बार पहिली ही सीटिंग्स में हो जाया करती थीं यहां तक कि जिन व्यक्तियों को इस काम के लिये मीडियम बनाया उनमें भी उसी तरह की अनुभूतियां व चमत्कार दिखलाई दिये। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारी योग पद्धति जहां तक उसके केन्द्रित स्तम्भ का ताल्लुक है वह एक अडिग महान शक्तिशाली गुरु की अपनी देन है जो उनके महान तप का एक प्रतीक है।

आध्यात्मिक तप और लोक परलोक का साथी

(श्री मूलचन्द्र जी गुप्त)

परम पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज का प्रवचन

७ अप्रैल १९५५, चैत्र पूर्णिमा को साधना सत्संग देहली श्री लाला भगवानदास जी की कोठी में श्री महाराज जी ने ये भाव व्यक्त किए :—

जप करना आध्यात्मिक तप है। जितना अधिक जप होगा, उतना ही अधिक आत्मा निर्मल होगा। जप बड़ी भावना के साथ करना चाहिए। इससे संस्कारों पर गहरा असर पड़ेगा। साधक स्वयं प्रतीत करेगा। जब स्वयं अजपा जाप चलेगा। वाणी से नहीं जीभ से नहीं, स्वयं मानसिक जाप होता जायेगा। अविद्या की ग्रन्थी टूट जायगी। दशम द्वार से पार हो जायगा। मानो साधक का परम कल्याण हो जाता है।

व्यक्ति समाधि के लिए बड़े जप तप साधन करते हैं। पहाड़ों की कन्दराओं में, कुटियाओं में, गंगा तट पर अनेक प्रकार से साधन करते हैं। वह अपनी जगह पर हैं। परन्तु हमारे लिए तो श्रेष्ठ राम नाम का साधन है। किसी को योग निद्रा आ जावे। जप निद्रा तो रोज ही आती है। जप से सिद्धि प्राप्त होती है। यह प्रबल भावना स्त्री-पुरुषों में होनी चाहिए। इससे संकट शीघ्र कट जाते हैं, सौभाग्य बनता है। व्यक्तियों को कुछ न कुछ अवलम्बन होना चाहिए। अतः नाम जप में अधिक समय व्यतीत करना चाहिए। व्यर्थ समय नहीं खोओ।

राम नाम के जप कीर्तन करने में लज्जा नहीं आनी चाहिए। जब स्त्री-पुरुषों को सिनेमा जाने में या अन्य गंदे व्यसनों के करने में लज्जा नहीं आती, तो राम नाम की माला जपने में क्यों आवे—भक्त राम नाम की माला से तर जाता है। यह माला बड़ा ग्रन्थ है। यह सदा बना रहता है। यदि यह साथ में हो, तो अन्य साथी, मित्र या साथियों की आवश्यकता नहीं। यह लोक परलोक की साथी है। हर्ष के साथ माला जपना चाहिए। प्रभु के साथ जब प्रीति लगा ली तो कोई कुछ भी कहे संकोच नहीं करना चाहिए। घर के लोगों से भी निर्मम होना चाहिए। इससे अंतः करण शुद्ध होता है। जो संसार की परवाह नहीं करते व राम से ही लौ लगाते हैं, वह राम को प्राप्त होते हैं। जप की मर्यादा बनाने से बड़ा लाभ होता है, कि इतना प्रतिदिन जाप करेंगे। राम धन का सदैव संचय होता है। कभी हानि तो होती ही नहीं और न खर्च होता है। अधिक राम धन का मोह हो जावे, तो यह लोभ तो श्री राम चरण शरण में ले जाता है। कल्याण कर देता है।

साधक की उँगलियाँ माला के ऊपर नृत्य करती हैं। भक्त के कान कीर्तन सुनते हुए नृत्य करें, जीभ हरि-कीर्तन करती हुई नृत्य करे और मन व उंगली राम नाम की माला जपती रहें। राम नाम के जपने वाले काल को भी कत्ल कर डालते हैं। यह भाव ऊँचा और श्रेष्ठ है। राम भक्त सुरा की तरह है। आत्मा सुरा ही रहती है। राम भक्त का नाश कभी नहीं होता। उनकी अवधि पूरी हो गई है, तो भले ही शरीर छूटे। निर्भयता, निडरता होनी चाहिए, तब लाभ होता है। मनोबल, वाणी बल बढ़ता जाता है। यह

(शेष पृष्ठ २३ पर)

रामायणसार की शिक्षाएं

(कविरत्न, विद्याभास्कर अमीरचन्द्र शास्त्री साहित्याचार्य)

इससे पूर्व बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड-पूर्वार्ध की शिक्षाओं की समीक्षा की गई है, पूज्यपाद महाराज जी ने अयोध्याकाण्ड-उत्तरार्ध में पत्नी का स्वरूप, भाई का स्वरूप, पिता का स्वरूप इत्यादि मानव-जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायक विषयों पर कोष्ठकों में बहुमूल्य शिक्षाएँ दी हैं। श्री रघुनन्दन-राम वनवास के लिए श्री सीता जी का आग्रह देख उन्हें सब वस्तुएँ पात्रों में बाँट देने का उपदेश देते हैं। उस समय श्री सीता जी श्री राम जी की कैसी धर्म पत्नी हैं, उसका वर्णन करते हुए महाराज जी लिखते हैं--

यज्ञ धर्म शुभ कर्म संगिनी,
कही पत्नी पति अर्ध अंगिनी।
घर वन विजन में सहविहारिणी,
विपद व्याधि व्यथा निवारिणी॥
कष्ट कलेश असह्य सहारिणी,
सच्ची सखी सदा सहचारिणी।
प्रिया प्राणसमा जग जीना,
मुदित करी मन माधुरी वीणा॥
हर्ष जड़ी जो जीवन जाया,
शान्ति भरी शुभ शीतल छाया।
लोकद्वय की साथिन गाई,
पति की गति मति कर्म बड़ाई॥

"यज्ञ-धर्म और अन्य शुभ कर्मों में संग रहने वाली, पति की अर्धाङ्गिनी पत्नी कही गई है। इसीलिए घर में या निर्जन वन में जो स.थ रहने वाली हो पति की विपत्तियों, व्याधियों और पीड़ाओं को दूर करने वाली हो। असह्य कष्टों और क्लेशों को सहन करने वाली हो, सच्ची सखी और सदा सहचारिणी हो। प्राणों के समान प्यारी हो वीणा के समान अपनी माधुरी से जीवन और मन को मुदित करने वाली हो। हर्ष की जड़ी-बूटी हो, जीवन का जीवन हो, शान्ति से पूर्ण हो, शीतल छाया के समान खेद का निवारण करने वाली हो। इस लोक और परलोक की साथिन हो ऐसी पत्नी पति की गति, पति की मति और पति के कर्मों की बड़ाई का कारण गाई गई है।"

सन्त तुलसीदास जी महाराज के अनुसार--

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परखिये चारी।"

धैर्य, धर्म, मित्र और नारी इन चारों की परीक्षा आपत्तिकाल में ही होती है। इसलिए महाराज जी ने यहाँ अधिक करके आपदकाल की सहचारिणी को ही पत्नी बताया है। वैसे भगवान् पाणिनि ने "पत्युर्नो यज्ञसंयोगे" इस सूत्र के द्वारा पति का यज्ञ में सहयोग के करने वाली स्त्री ही पत्नी कहलाती है, पत्नी शब्द का यही तात्पर्य बताया है। आर्यजनों का तो सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञमय होता है वे प्रत्येक शुभकार्य यज्ञ भावना से ही करते हैं। विशेष रूप में

"द्रव्ययज्ञा स्तपोयज्ञा योग यज्ञा स्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥"

के अनुसार द्रव्यदान, तप-अनुष्ठान, योग-साधन, सद्ग्रन्थों का अध्ययन और सत्संगरूप

ज्ञान यज्ञ इन सभी कार्यों में वह पति के साथ रहती है, तभी पत्नी कहलाती है। इस प्रकार श्रुति स्मृति पुराण आदि सद्ग्रन्थों में पत्नी के जो जो शुभ लक्षण कहे गए हैं प्रायः महाराज जी ने यहाँ वे सभी संकलित कर दिये हैं। फिर ऐसी पत्नी को जीवन सखा मानते हुए महाराज जी ने ऐसे सखा के संग से जीवन में क्या मंगल होते हैं इसका वर्णन किया है––

"संग सखा ऐसे के होते,
सुख के सरते सूखे सोते।
फिरते दिन, बिगड़ी बन आती,
खोई गई हाथ आ जाती॥
यति सती दानी शूर सहारे,
देश धर्म के कार्य भारे।
युग युग में होते हैं आये,
मुक्त कण्ठ से गुणि गण गाये॥
सभ्य सर्ग की सोभा सीता,
वन में साथिन बनी विनीता।
पतिव्रता भगवती भवानी,
नारि जगत् की जीवन जानी॥"

महाराज जी लिखते हैं कि ऐसे सखा का साथ होते ही सुख के सूखे हुए स्रोत भी फिर बहने लगते हैं। मनुष्य के दिन फिर जाते हैं, बिगड़ी बात बन जाती है। खोई हुई सुख-सम्पत्तियाँ फिर हाथ आ जाती हैं। व्यक्ति के कार्यों का क्या कहना। यति, सती, दानी और शूरवीर साथियों के सहारे तो देश और धर्म के भी बड़े बड़े कार्य युगयुगान्तर से होते चले आये हैं, विद्वान् लोग मुक्त कण्ठ से अच्छे साथियों की प्रशंसा करते हैं। श्री सीता तो सभ्य सृष्टि की शोभा हैं तभी वे श्रीराम की वनवास की साथिन बनी हैं। वे भवानी (पार्वती) के समान पतिव्रता और भगवती (छः प्रकार के ऐश्वर्य आदि गुणों वाली) हैं, इसीलिए वे नारि जगत् का जीवन मानी गई है।

महाकवि भवभूति ने अच्छे साथियों के विषय में लिखा है कि

"न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥"

"जो जिसका प्यारा होता है, वह चाहे कोई उपकार न करे तो भी अपने सहवास के सुख से ही दुःखों को दूर कर देता है। जो जिसका प्यारा है, वह उसका एक अलौकिक धन है।" इसीलिए सच्चे सखा का संग होते ही मनुष्य के सुखों का सूखा हुआ स्रोत फिर बहने लगता है, इत्यादि कहा गया है। देश और धर्म का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यति–ब्रह्मचारी या संयमी–पुरुषों और सती-पतिव्रता-स्त्रियों ने कितने महान् कार्य किए हैं। तब श्री सीता जी जैसी सती के साथ रहने से श्रीराम के कार्य क्यों निर्विघ्न सिद्ध न होंगे, जिन्होंने अपना सारा जीवन देश और धर्म के लिए अर्पण कर दिया है, लगा दिया है। फिर श्री सीता जी तो भगवती भवानी (पार्वती) के समान पतिव्रताओं की शिरोमणि हैं, और भगवती हैं अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र शोभा, समग्र वैराग्य और समग्र ज्ञान की स्वामिनी हैं। अपने इन्हीं अलौकिक गुणों के कारण वे नारि समाज का जीवन अर्थात् नारि-समाज को आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देने वाली हैं।

इस प्रकार श्री सीता जी के वन में साथ जाने की तैयारी के समय पत्नी के सद्गुणों का वर्णन करके श्री लक्ष्मण जी को भी साथ जाने को तैयार देख कर भाई के सद्गुणों का वर्णन करने का अवसर भी महाराज जी ने हाथ से जाने नहीं दिया। उन्होंने कोष्ठक में अच्छे भाई के लक्षण और गुणगणों का वर्णन करते हुए लिखा है—

मनतन से यथा अंगांगी,
दुःख सुख में हो सच्चा संगी।
विपद् व्याधि में बने सहाई,
सो सज्जन समझो शुभ भाई॥

जो हो हृदय से हितकारी,
सरल सखा सदा स्नेह धारी।
प्राणों सम जो प्रेमी प्यारा,
वह भाई गुणी गण उच्चारा॥

बन्धु, बन्धु की शीतल छाया,
जीवन ज्योति दूसरी काया।
बली हाथ बांह शक्तिशाली,
बन्धु आश्रय है बलशाली॥

जो तन मन से अपना ही अंग बना हुआ हो। सुख और दुःख दोनों में जो कभी संग न छोड़े। विपत्ति काल में पूरी सहायता करे उस सज्जन को अच्छा भाई समझना चाहिए। जो हृदय से हित चाहता हो और हित करता हो, जो निश्छल सखा हो, जिसका स्नेह सदा एकरस हो, जो भाई को प्राणों से भी अधिक प्यार करता हो, गुणी जन उसे अच्छा भाई कहते हैं। भाई वह है जो भाई के लिए ठंडी छाया के समान सुखकारी हो, जीवन की ज्योति हो, एक प्राण दो शरीर हो, भाई का एक समर्थ आश्रय हो, उसे ही बन्धु या भाई कहते हैं। इस प्रकार भाई के लक्षण बता कर अब भाई के गुण लिखते हैं—

भाई भुज के सबल सहारे,
कार्य होते जग में भारे।
निर्भय फिरते भाई वाले,
उनके कहने जाते पाले॥

बाँह पसार मिलें जब भाई,
सुर-सुख रहते सर्व लजाई।
पूरी प्रेम झड़ी लग जाती,
बन्धु बन्धु की मिलती छाती॥

जैसा जग में जननी जाया,
मित्र मिले कब पुत्र पराया।
भाई भाईपन के नाते,
जी जीवन से मिल जुड़ जाते॥

राम-सखा लक्ष्मण वर भ्राता,
पालन कर स्वबान्धव नाता।
सर्व समर्पण करके शूरा,
भाईपन में उतरा पूरा॥

भाई के भुजा के समर्थ सहारे से भाई के बड़े बड़े कार्य हो जाया करते हैं। जिसका भाई होता है वह संसार में निर्भय होकर विचरता है। उसका वचन पूरा किया जाता है। जब भाई भाई से बाँहें फैलाकर मिलता है तब जो सुख होता है उस सुख के सामने देवताओं के सभी सुख शरमा जाते हैं। वहाँ प्रेम की एक झड़ी लग जाती है जहाँ भाई की छाती से भाई की छाती मिलती है। जैसा मित्र संसार में अपना सहोदर भाई होता है वैसा पराया पुत्र कब हो सकता है। तभी

तो राम जी ने लक्ष्मण—मूर्छा के समय विलाप करते हुए कहा था कि—

देशे देशे कलत्राणि, देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि, यत्र भ्राता सहोदरः॥

"देश विदेश में पत्नी मिल सकती है। सगे संबन्धी भी देश विदेश में बन सकते हैं किन्तु मैं वह देश नहीं देखता जहाँ अपनी इच्छा से सहोदर भाई मिल सकता हो।" भाई ही भाईपन के नाते से हमारे जीवन से मिलकर एक हो सकता है। श्रेष्ठ भ्राता लक्ष्मण ने भी राम के सुख-दुःख का साथी बनकर अपने उस भ्रातृभाव के नाते को निभाया। उस वीर ने भाई के लिए जीवन के सभी सुख समर्पण कर दिए और भाईपने में पूरा उतरा।

यद्यपि रामायण के कवियों ने लक्ष्मण की पत्नी ऊर्मिला को प्रायः भुला दिया है किन्तु महाराज जी अपनी रामायण में वनवास के समय ऊर्मिला की उपेक्षा नहीं करते। वे लक्ष्मण को ऊर्मिला से भी अनुमति मांगने के लिए भेजते हैं। अपने पति का वनगमन सुनकर स्त्री—स्वभाववश ऊर्मिला व्याकुल हो जाती है। नेत्रों में आँसू भर लाती है। किन्तु मांगलिक कर्मकांड करके उन्हें तिलक लगाकर वह विदा कर देती है इस पर महाराज जी लिखते हैं—

सेवा समर हेतु जब जावे,
पत्नी पथ में नहीं तब आवे।
देश विदेश वणिज को जाना,
संकट हरण कर्म भी नाना॥
भार्या कभी न बाधक होके,
धर्म पथ से पति को रोके।

पत्नी को चाहिए कि जब पति किसी सेवा कार्य में जाने को तैयार हो या देश, जाति, धर्म के लिए लड़ाई के मैदान में उतरने लगे तब वह पति के रास्ते में रुकावट बनकर न आवे इसी प्रकार देश विदेश में व्यापार करने के लिए अथवा किसी का संकट निवारण करने के लिए जब वह जाने लगे तो पत्नी को उसके रास्ते की रुकावट बनकर उसे कर्तव्य पथ से विचालित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसी के अनुसार ऊर्मिला ने श्री राम जी की सेवा के लिए जाते हुए अपने पति लक्ष्मण के मार्ग में कोई कठिनाई या रुकावट उपस्थित नहीं की।

महाराजा दशरथ राम लक्ष्मण जानकी को वन गमन के लिए तैयार देखकर बहुत आतुर होने लगे और राम जी को कहने लगे कि मैं दोषी हूँ मुझे बांध दो और अयोध्या के राजा बन जाओ मैं जो कुछ कह रहा हूँ धर्म और न्याय के अनुकूल कह रहा हूँ। ऐसा ही करो। "तब उन्हें धैर्य बंधाते हुए राम जी ने पिता पुत्र के पवित्र संबंध का जो वर्णन किया उसे भी शिक्षा-प्रद जानकर महाराज जी ने कोष्ठक में लिखा है। वे लिखते हैं—

पिता पुत्र का प्राण सहारा,
जीवन मूल प्रथम उच्चारा।
पिता पुत्र में हो अवतारी,
सुबिम्ब प्रतिबिम्बानुसारी॥
पिता पुत्र हैं अंशांशी,
धर्म कर्म गुण गण से वंशी।
सुत की आत्मा पिता कहाता,
अपर रूप है वेद बताता॥

पूज्य देव प्रभु साकारी,
पिता रूप है विग्रह धारी ।

पिता पुत्र के प्राणों का सहारा है । उसके जीवन का मूल कारण है । पुत्र के रूप में पिता ही अवतीर्ण होता है जैसे दर्पण में वस्तु के अनुरूप ही प्रतिबिम्ब पड़ता है । पिता अंशी हैं और पुत्र उनका अंश है । पिता की वंशपरम्परा से ही पुत्र को धर्म कर्म और गुणगण प्राप्त होते हैं । पुत्र की आत्मा पिता की ही आत्मा का अंश है ।

अङ्गादङ्गात् प्रभवसि, हृदयादधि जायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदः शतम् ॥

इत्यादि वेद मंत्रों में पिता के मुख से पुत्र को उसकी आत्मा कहलाया गया है । पुत्र पिता का ही दूसरा रूप बताया गया है । पुत्र के लिए साकार प्रभु के रूप में पिता ही पूज्य देव है क्योंकि वास्तव में परमात्मा ही शरीरधारी होकर पुत्र को जन्म देता है और उसका पालन पोषण करता है । इसी प्रकरण में श्री राम जी अपनी यह प्रबल कामना प्रकट करते हैं कि मेरे प्राण भले ही जाएँ पर पिता जी का प्रण अवश्य पूरा हो जाए यहाँ प्रण की पूर्ति को चारित्र की कसौटी बताते हुए महाराज जी कोष्ठक में लिखते हैं ।

सुजन बहुत लिखते हैं पोथे,
आप चरित से होते थोथे ।
सदाचार सत्य धर्म त्यागी,
फिरते बने विद्वान् विरागी ॥
कुल मर्यादा रीति को छोड़ें,
गृह धर्म से मन मुख मोड़ें ।
करते सो जो हो मनमानी,
उन्हें न भाती सच्ची पुरानी ॥
माता पिता सगे सब नाती,
भाते नहीं उन्हें जन जाती ।
राम चरित है चित्र निराला,
धर्म कर्म सुज्ञान की शाला ॥
करने में कहना दिखलाया,
आचरण रूप शुचि ग्रंथ बनाया ।
राघव में वह शोभा आई,
और ठौर न देवे दिखाई ॥

कई सज्जन बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखा करते हैं किन्तु वे स्वयं चरित्र से हीन होते हैं । सदाचार सत्य और धर्म का त्याग करके बड़े वैरागी, विद्वान् बने फिरते हैं । कुलकी मर्यादाओं का परित्याग करके गृहस्थ धर्म से मन और मुख मोड़ करके मनमानी करते फिरते हैं । उन्हें सच्ची पुरानी बातें बिल्कुल नहीं भातीं, नहीं उन्हें माता-पिता सगे–संबंधी और अपनी जाति के लोग ही अच्छे लगते हैं । राम का चरित्र एक अनोखा चित्र है जिसमें धर्म, कर्म और ज्ञान सभी का सुन्दर दिग्दर्शन है । राम ने अपने चरित्र द्वारा ही अपना वक्तव्य या मन्तव्य प्रकट कर दिया है । आचरण के रूप में ही एक सुन्दर ग्रन्थ बना दिया है । जो शोभा राम के इस पवित्र चरित्र में पाई गई है वह अन्य किसी ग्रंथ में दिखाई नहीं पड़ती ।

एक स्वप्न, एक विनय

एक ही चिन्तन रहा—क्या पत्र का हो नाम ?
जो ललित हो, हो सरस, गौरव समेत, ललाम ।।

सत्यमय सन्देश होंगे, सत्यमय सिद्धान्त ।
सत्यमय साहित्य होगा, कान्त एवं शान्त ।।

नाम पहला हो गया था, किन्तु अस्वीकार ।
नाम अन्तिम भा गया था, पा गया अधिकार ।।

हन्त ! तो भी एक चिन्तन का, चला था स्रोत ।
रात्रि में सहसैव आया, स्वप्न बनकर पोत ।।

वस्त्र भगवे रूप गोरा, गात अति सुकुमारु ।
दृष्टि उज्ज्वल और दन्तावलि वलितद्युतिचारु।।

पूज्य स्वामी जी पधारे, मन्द स्मित के साथ ।
श्री चरण युग में झुकाया, दास ने तब माथ ।।

किन्तु मुझको निज करों से, पकड़ बोले देव ।
क्यों वृथा चिन्ताकुलित हो, नाम निश्चित एव।।

सत्यमय साहित्य का, करते रहो स्वाध्याय ।
और व्याख्यासहित, उसका हो प्रकाश सदाय।।

रुचि करो उत्पन्न ऐसी, सब पढ़ें साहित्य ।
सब लिखें, सबही करें, चर्चा परस्पर नित्य ।।

प्रेम जी को भी कहो, वे साधना के साथ ।
सत्यमय साहित्य की, आराधना लें माथ ।।

सिर झुकाकर सुनरहा था, श्रीचरण-आदेश ।
मौन होते ही हुए, वे ज्योति-सी में शेष ।।

आज भी वह रूप सुन्दर, वृद्ध भी सुकुमारु ।
बस रहा है लोचनों में, और मन में चारु ।।

लेख लिखते समय उनके, ध्यान से पा चेत ।
उलझनों से छूटता, मन प्राप्त कर संकेत ।।

साधकों से है विनय, वे सब करें स्वाध्याय ।
और लिखकर भेज दें, जो स्फूर्ति मनमें आय ।।

लिख सकें हिन्दी अगर तो, हो अधिक सहयोग ।
अन्यथा अन्यान्य लिपि का, ही करें उपयोग ।।

हम करेंगे यत्न करके, हिन्दी में अनुवाद ।
है यही आशा रखेंगे, इस विनय को याद ।।

सहायक सम्पादक

प्रार्थना और उसका प्रभाव

"आत्मकल्याण की कामना से प्रार्थना"

(एक व्याख्यात्मक विचार)

गत अंक में प्रार्थना के प्रकारों पर स्वतन्त्र दृष्टि से विचार किया गया था। उनमें प्रथम प्रकार है आत्मकल्याण की कामना से प्रार्थना। पूज्य स्वामी जी महाराज ने इस पर विशेष विचार करते हुए लिखा है--

"अपने चैतन्य भाव की जागृति के लिए प्रार्थना करना, अपनी चित्त शुद्धि के लिए प्रार्थना करना, अपने मन की विमलता के लिए प्रार्थना करना और पापताप की निवृत्ति के लिए प्रार्थना करना---यह आत्मकल्याण की कामनारूप प्रार्थना है।"

इस वाक्य में महाराज जी ने जिन निमित्तों के लिए प्रार्थना को आत्मकल्याण की कामनारूप प्रार्थना लिखा है, उन निमित्तों में कार्य-कारण भाव सम्बन्ध है। जैसे 'चैतन्यभाव की जागृति' मानवीय-जीवन का एक मुख्य लक्ष्य है, इसके बिना मनुष्य में और पशु में कोई अन्तर नहीं रहता, किन्तु चैतन्य भाव की जागृति के लिए चित्त शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है अतः चित्त शुद्धि कारण है और चैतन्य भाव की जागृति कार्य है। इसी प्रकार चित्त शुद्धि के लिए मन की विमलता अनिवार्य है और मन की विमलता के लिए पाप-ताप की निवृत्ति अपेक्षित है। पापताप की निवृत्ति के बिना मन में विमलता नहीं आती। मन की विमलता के विना चित्त शुद्धि नहीं होती और चित्त शुद्धि के विना चैतन्य भाव की जागृति नहीं होती। अतः पापताप की निवृत्ति, मन की विमलता तथा चित्त शुद्धि साधन हैं और चैतन्य भाव की जागृति साध्य है। साधक को साधन-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए भी प्रार्थना का आश्रय लेना पड़ता है और साध्य की सिद्धि के लिये भी।

जब साधक चैतन्य भाव की जागृति के लिये--जो परमार्थ पथ की पहली सीढ़ी है या मुख्य सिद्धि है---प्रार्थना करता है या उसके साधन प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करता है, तब वे प्रार्थनाएँ केवल आत्मकल्याण की कामना से ही होती हैं, अतः इस प्रकार की प्रार्थना को आत्म-कल्याण की कामनारूप प्रार्थना कहा जाता है।

"ओम् द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥"

इत्यादि वेदमन्त्रों में पाप-ताप की निवृत्ति के लिये प्रार्थना की गई है।

"ओम् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।"

इत्यादि वेदमन्त्रों में मन की विमलता या सङ्कल्प की कल्याणमयता के लिए प्रार्थना की गई है। इस प्रकार की सभी प्रार्थनाएँ "चैतन्य भाव की जागृति" रूपी साध्य की प्राप्ति के लिए

साधन-सम्पत्ति प्राप्त कराने वाली हैं। किन्तु इस साधन-सम्पत्ति में पाप-ताप की निवृत्ति भी साध्य है और इसका साधन है भगवद्भक्ति। तभी तो महाराज जी ने लिखा है—

"भगवद् भक्ति की प्राप्ति की प्रार्थना करना, परमेश्वर में अत्यन्त प्रीति हो, उसमें अचल विश्वास हो, पूरी श्रद्धा हो और संशयरहित निश्चय हो, यह भी आत्मकल्याण की प्रार्थना का सर्वोत्तम प्रकार है।"

साधारणतया लोग श्रवण, कीर्तन, अर्चन आदि बाह्य क्रियाओं को ही भगवद्भक्ति मान लेते हैं, किन्तु वे भगवद्भक्ति के आन्तरिक मर्म का ध्यान नहीं रखते। महाराज जी ने भगवद्-भक्ति का आन्तरिक मर्म चार बातों द्वारा बताया है—

१. परमेश्वर में अत्यन्त प्रीति हो।
२. उसमें अचल विश्वास हो।
३. उसमें पूरी श्रद्धा हो।
४. उसमें संशयरहित निश्चय हो।

इन चारों बातों का सम्बन्ध वाह्य आचार से नहीं है, केवल हृदय से है। "सा परानुरक्ति-रीश्वरे" इस शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार परमेश्वर में परम अनुराग या अत्यन्त प्रीति को ही भक्ति कहा गया है। परम अनुराग या अत्यन्त प्रीति का तात्पर्य है कि भगवान् के सिवाय अन्य किसी से कोई ममता का भाव न रहे। केवल भगवान् में ही सर्वभाव से तन्मय हो जाए। जैसा कि भक्तिप्रकाश के शब्द प्रकाश खण्ड के भक्ति प्रकरण में लिखा है—

"सुभक्ति अपने रामकी, नहीं और से काम।
निराकार भगवान् है, सबसे ऊंचा धाम॥
भक्ति करो भगवान की, तन्मय हो मन लाय।
श्रद्धा प्रेम उमंग से, भक्ति भाव में आय॥"

सुभक्ति या अत्यन्त प्रीति तो यही है कि मन में यह विश्वास अचल रहे कि राम मेरे अपने हैं, उनके सिवाय मुझे और किसी से कोई काम नहीं है। वे राम भगवान् निराकार हैं और वे सबसे ऊँचा धाम हैं। भगवान् की भक्ति तन्मय होकर, उसमें मन लगाकर करनी चाहिए। पूरी श्रद्धा और अगाध प्रेम की उमंग से भक्ति भाव में आ कर ही भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। इस अचल विश्वास और पूरा श्रद्धा के साथ यह भी आवश्यक है कि भगवान् की सत्ता में संशयरहित निश्चय हो, तभी तो लिखा है कि

आस्तिकता होवे सुदृढ, श्रद्धा प्रीति अटूट।
मनमें निश्चय अचल हो, तब हो भक्ति अखूट॥

"अस्ति ईश्वरः, अस्ति परलोकः, अस्ति दिष्टम् इति मतिर्यस्य सः आस्तिकः" ईश्वर है, परलोक है, वेदशास्त्रों में जो कुछ कहा गया है वह सत्य है, यह बुद्धि जिसको प्राप्त हो उसे आस्तिक कहते हैं, यह आस्तिक भाव या आस्ति-कता सुदृढ हो, श्रद्धा और प्रीति अटूट हो तथा मन में अचल निश्चय हो—संशय रहित निश्चय हो—तब अखण्ड भक्ति होती है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही महाराज जी ने लिखा है कि भगवद्भवित की प्राप्ति की प्रार्थना करना, परमेश्वर में अत्यन्त प्रीति हो, उसमें अचल विश्वास हो, पूरी श्रद्धा हो और संशयरहित निश्चय हो, यह भी आत्मकल्याण कामना की

प्रार्थना का सर्वोत्तम प्रकार है। इसमें अत्यन्त प्रीति ही भगवद्भक्ति है, अचल विश्वास, पूरी श्रद्धा और संशयरहित निश्चय उस भगवद्भक्ति के साधन हैं।

इस प्रकार एक साधक प्रार्थना द्वारा ही अचल विश्वास, पूरी श्रद्धा और संशयरहित निश्चय प्राप्त करता है तथा प्रार्थना द्वारा ही इन सब के फलस्वरूप भगवद्भक्ति का वरदान पाता है। भगवद्भक्ति से पाप-ताप की निवृत्ति होती है, उससे मन में विमलता आती है, इससे चित्त शुद्धि होती है और चित्त शुद्धि से चैतन्य भाव की जागृति होती है। एक साधक यह सभी सिद्धियाँ प्रार्थना द्वारा ही प्राप्त कर लेता है।

चैतन्य भाव की जागृति से अज्ञान का नाश और अज्ञान के नाश से कर्म बन्ध का नाश होता है कर्म बन्ध के नाश से परम आनन्द की प्राप्ति होती है, किन्तु एक साधक प्रार्थना द्वारा ही यह तीनों सिद्धियाँ भी प्राप्त कर लेता है। इसीलिए महाराज जी ने लिखा है—

"अज्ञान और कर्मबन्ध के नाश की प्रार्थना करना और परमानन्द प्राप्ति की याचना करना, यह भी आत्मकल्याण की प्रार्थना के अन्तर्गत है।"

इस प्रकार "आत्मकल्याण की कामना से प्रार्थना" का विवेचन करते हुए महाराज जी ने आत्मकल्याण का मार्ग भी स्पष्ट दिखला दिया है—ईश्वर पर अचल विश्वास और पूरी श्रद्धा हो, उसकी सत्ता के विषय में संशयरहित निश्चय हो तब भगवद्भक्ति प्राप्त होती है। भगवद्भक्ति से पाप-ताप की निवृत्ति होती है उससे मन में विमलता होती है, इससे चित्त शुद्धि होती है चित्त शुद्धि से चैतन्य भाव की जागृति होती है। चैतन्य भाव की जागृति से अज्ञान का नाश होता है और उससे कर्मबन्ध की निवृत्ति होती है और कर्मबन्ध की निवृत्ति से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयग ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

सब संशयों की छिन्न भिन्न हो जाने पर हृदय में लगी हुई अज्ञान की ग्रन्थि खुल जाती है, ज्ञान का उदय हो जाने पर कर्मबन्ध का क्षय हो जाता है। जब उस परात्पर परमात्मा का दर्शन प्राप्त होता है, तब इन सिद्धियों को पाकर जीव कृतार्थ हो जाता है। अचल विश्वास से लेकर परमानन्द की प्राप्ति तक का यह मार्ग परमार्थ पथ या आत्मकल्याण का मार्ग कहलाता है।

भक्ति प्रकाश साधन प्रकाश के 'मन को प्रबोधन' प्रकरण में भगवद् भजन को कल्याण का साधन बताते हुए महाराज जी ने लिखा है—

मेरे प्यारे पूजले, चरण कमल जगदीश ।
भुवन कर्ता भगवान जो, है ऋषियों का ईश ॥
उसके पूजन ध्यान से, तेरा हो कल्याण ।
तेरा वह आधार है, तेरा जीवन प्राण ॥

"हे मेरे प्यारे मन, तू जगदीश प्रभु के चरण-कमलों की पूजा कर ले। वे भगवान् ही चौदह भुवनों के निर्माता हैं और ऋषि-मुनियों के आराध्य हैं। उस भगवान् के पूजन ध्यान से ही तेरा कल्याण होगा क्योंकि वह जगदीश ही तेरा आधार है, तेरा जीवन प्राण है।" भगवद्भक्ति

से चैतन्यभाव की प्राप्ति होती है, इस पर भी महाराज जी वहीं पर लिखते हैं––

पूजा सायं प्रातः कर,
जभी मिले अवकाश ।
इससे तेरे रूपका,
होगा सुलभ विकाश ।।

"हे मेरे मन, तू प्रातःकाल और सायंकाल और जब भी तुझे अवकाश मिले तब भगवान् की पूजा कर, इससे तेरे चैतन्य स्वरूप का विकास सरलता से ही हो जाएगा । भगवद्भक्ति से पाप-ताप की निवृत्ति भी स्वयं हो जाती है," महाराज जी आज्ञा करते हैं कि

प्रीति अमीरस पान कर,
प्रेम पगा हो आप ।
परहित परता में रहो,
परिहर पातक पाप ।।

"हे मेरे मन, तू स्वयं प्रेमपगा होकर प्रीति-रूपी अमृतरस का पान कर । सभी पाप-तापों को त्याग कर दूसरों के कल्याण के लिए तू सदा परहित में तत्पर रह ।" यहाँ प्रीतिरूपी अमृतरस का पान करने के बाद पाप-तापों का त्याग कर सकने की शक्ति अनायास ही प्राप्त हो जाती है––यह सूचित किया गया है । भगवद्भक्ति के मार्ग में विश्वास या भरोसा परम आवश्यक है, इस पर महाराज जी आज्ञा करते हैं––

भक्ति भजन तव धर्म है,
कर्मयोग है काम ।
पथतो तेरा प्रेम है,
परम भरोसा राम ।।

"हे मेरे प्यारे मन, भगवद्भक्ति या भजन तो तेरा धर्म है––कर्मयोग तेरे काम करने की एक सुन्दर शैली है । तेरा रास्ता प्रेम का है, जिस रास्ते पर केवल राम का ही भरोसा है ।

"अवलम्बन हो राम का,
जो सब ऊपर एक ।
आशा और विश्वास की,
है वह ऊँची टेक ।।

"हे मेरे प्यारे मन, जो एक राम सब से ऊपर हैं, तू उनका सहारा ले । क्योंकि राम का सहारा ही आशा और विश्वास की सब से ऊँची टेक है ।" इसी प्रकार 'आत्मोद्बोधन' प्रकरण में पाप-ताप की निवृत्ति होने पर ही चैतन्यभाव की प्राप्ति होती है, इस आशय से महाराज जी लिखते हैं कि––

"तेरे अपने रूप में,
नहीं पाप का वास ।'
अविद्या में है पाप सब,
वही कष्ट की रास ।।

"हे मेरी आत्मा; तेरे निज रूप में पाप का लेशमात्र भी प्रवेश नहीं है । यह सब पाप तो अविद्या या अज्ञान में ही हैं, वह अविद्या ही सब कष्टों की राशि या ढेर है ।" इस अविद्या या अज्ञान की निवृत्ति चैतन्यभाव की प्राप्ति से ही होती है इस पर महाराज जी लिखते हैं––

"तूतो तेज अखण्ड है, ढका तमोमय कोष।
इसे दूर कर ज्ञान से, तज शंका के दोष ॥"

"हे मेरी आत्मा, तू तो एक अखण्ड तेज है, जो तमोमय कोष से ढका हुआ है। उस तमोमय कोष या अज्ञान को तू अपने स्वरूप के ज्ञान द्वारा दूर कर। तेरे ज्ञान में भ्रम, सन्देह, शंका आदि दोष न रह जाए। इसका सदा ध्यान रख।" इसी तमोमय कोष को हटाने के लिए।

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥"

इत्यादि वेदमन्त्रों में प्रार्थना की गई है। "देखने में सुन्दर अविद्या या अज्ञान के सुवर्णमय पात्र से सत्य स्वरूप आत्मा का मुख ढका हुआ है। हे विश्व के पोषक परमात्मा, उस अज्ञान के आवरण रूप पात्र को हटा कर तू आत्मा का मुख निरावरण कर दे। जिससे मैं उस सत्यस्वरूप आत्मा के सत्, चित्, आनन्द आदि धर्मों का दर्शन कर सकूं।" इस प्रकार अनादिकाल से भारतीय आत्माएँ आत्मकल्याण की कामना से उसके साधन और साध्यों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती आती हैं, और यह आत्मकल्याण की कामना रूप प्रार्थना निष्काम प्रार्थना मानी जाती रही है।

आत्मकल्याण की कामना होते हुए भी यह प्रार्थना निष्काम प्रार्थना क्यों मानी जाती है? इसके सम्बन्ध में गत अंक में स्वतन्त्र रूप से विचार किया गया था। इस प्रश्न का सुन्दर समाधान करते हुए महाराज जी लिखते हैं--

"यद्यपि निज कल्याण आदि की कामना से प्रार्थना करना और पर-सुख-स्वास्थ्य आदि के लिए प्रार्थना करना, यह एक प्रकार से कामना है परन्तु परमार्थ होने से तथा सांसारिक स्वार्थ न होने से ऊपर कहे ये दोनों प्रकार निष्काम प्रार्थना के ही समझे जाते हैं। जिस काम के करने में कर्ता का, इस लोक सम्बन्धी सुख, यश आदि प्रयोजन न हो, उसका वह कर्म निष्काम कर्म है।"

आध्यात्मिक तप और लोक परलोक का साथी

(पृष्ठ १२ का शेषांश)

साधन बड़ा लाभदायक है। राम धुन पैदा हो जावे, तो यही बड़ी चीज है। फिर क्या रह गया। साधक के हृदय मन्दिर में राम धुन गूंजने लगे, तो व्यक्ति पार हो गया। राम मन्दिर में जाने की कोई सीढ़ी है, तो राम नाम है। हम दावे से कहते हैं कि इसमें बड़ा बल है। हमारी बुद्धि विचलित नहीं होनी चाहिए। भावना दृढ़ बनानी चाहिए। राम नाम के जप को व्यक्तियों ने अमृत नहीं समझा, इसीलिए विश्वास नहीं। श्रद्धा खूब होनी चाहिए। राम रस भक्ति का प्रेम प्राप्त करना चाहिए। निर्वाण पैर के नीचे डोलता रहेगा। राम नाम जपने वाले को राम धाम मिलेगा। सदा ज्योति जाग्रत रहेगी। राम धुन खुब रमाओ। इतना नाम बस जाये कि पहाड़ के पानी की तरह अपने आप रिसने लगे।

दो गीत

(कोष्ठकों में शिक्षाएँ लिखने के साथ-साथ महाराज जी ने श्रीसीता जी के सम्बन्ध में दो गीत भी अयोध्याकाण्ड में लिखे हैं)।

१

सिया का जान बन जाना,
सखियाँ आई भर आहें।
करती शोक अधिक रोतीं,
मिली गल डालकर बाहें॥

कहें होकर अति गद्‌गद,
नयन से नीर बरसातीं।
यदि राघव न संग होते,
न देती हम तुम्हें राहें॥

अड़िये प्राण सम प्यारी,
सखी सुन्दर हमारी तू।
धर्म बाधक न होता तो,
सभी हम संग तव जाएँ॥

सरला स्नेह सनी सजनी,
सहेली है सयानी तू।
जगत् में दूसरी तुझ सी,
नहीं ढूढ़ें कहीं पाएं॥

सिया उनको लगा छाती,
बोली बहनों अरी सखियो!
रखना मन में मुझको तो,
मिलूंगी राम जब आएं॥

२

सिया को देख वन जाती,
महिला मिल आहें भरतीं।
चर्म के चीर चतुरा पर,
निरख कर बहुत थी डरतीं॥

भर कर श्वास बहु लम्बे,
हिचकियाँ सिसकियाँ लेतीं।
अविरल तर नयन अश्रु से,
गीले तन बदन करतीं॥

भरे यौवन सजी युवती,
फिरेगी घोर वन में तो।
इसे चिन्तन किये हम तो,
अड़ियों, जाती हैं मरतीं॥

बड़ी छोटी सभी जनियाँ,
घराने राज की तब ही।
गहन आति शोक सिन्धु में,
डूबती थीं कभी तिरतीं॥

कुसुम सम मृदु विधु वदना,
विमला शुभ कमल नयना।
विचरे बहु विषम वन में,
हम तो धीर ना धरतीं॥

(रामायण सार से)

पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

के

संसर्ग में आने के मेरे कुछ संस्मरण

(ले०--ठेकेदार चौधरी मेहरसिंह, सांपला मण्डी)

इस लेख में पाठकगण को श्री स्वामी जी महाराज से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध होने का वृतान्त तो ज्ञात होगा ही, साथ ही प्रसंगवश उनकी पवित्र जीवनी की अनेक झाँकियाँ देखने का लाभ भी प्राप्त होगा।

प्रथम दर्शन व परिचय--सन् १९२७ ई० की बात है। लाहौर में महाशय राजपाल की दुकान पर स्वामी जी पर छुरे द्वारा घातक हमला किए जाने पर उन्हें मेयो हस्पताल में दाखिल किया गया था। हस्पताल से छुट्टी पाने पर सर छोटुराम जी उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिए लाहौर से रोहतक अपनी कोठी पर ले आए।

छुडानी पधारना--इन दिनों स्वामी जी महाराज अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्तिप्रकाश' के लिखने में व्यस्त थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे सन्तों व भक्तों की जीवनियाँ व उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का अध्ययन करते फिरते थे। हमारे गाँव छारा के पास ही छुड़ानी ग्राम है, जहाँ जाट घराने में गरीबदास जी बड़े भक्त हुए हैं। उनके जन्मस्थान को स्वयं देखने व ग्रन्थसाहब का अवलोकन करने स्वामी जी छारा होते हुए छुड़ानी पधारे। इसी घटना द्वारा उनके प्रथम दर्शन व परिचय प्राप्त करने का महान् लाभ प्राप्त हुआ।

इन्हें सुविधापूर्वक छुड़ानी ले जाने के लिए सर छोटुराम जी ने चौ० केहरीसिंह मेम्बर डिस्ट्रिक बोर्ड को साथ भेजा था। इनके पेट व पीठ पर अभी तक भी घाव कच्चे ही थे। अतः उन्हें रहड़ू (बैलों का तांगा) में गद्दी आदि बिछा कर लाया गया। मार्ग में चौ० केहरीसिंह एक प्रसिद्ध विद्वान् संन्यासी के पधारने की सूचना लोगों को दे रहे थे साथ ही नमस्ते आदि करके उनका स्वागत करने को कहते जाते थे। मैं इन दिनों अनपढ़ मूर्ख मण्डली का सदस्य था, नम्रता व सभ्यता किस चिड़िया को कहते हैं। इसका स्वप्न में भी भान न था। मैंने कह दिया, "नमस्ते कर लेंगे इसमें म्हारा के बिगड़ै सै" फलस्वरूप हमने ऐसा ही किया।

रात्रि के समय बाजार में श्री स्वामी जी महाराज का भाषण हुआ। उन्हें एक मेज पर बिठलाया गया। भाषण जाटों की शूरवीरता के विषय में था। मुझे अच्छी तरह याद है। उन्होंने फरमाया जाट बड़े शूरवीर होते हैं। महाराजा भरतपुर आदि के अनेक ऐतिहासिक उदाहरण दिए। जाट का छोहरा और फिर उसके हाथ में लाठी हो तो कसर किस बात की रह जाती है। शेर को भी पछाड़ सकता है आदि २। इस भाषण का मुझ पर चमत्कारी प्रभाव हुआ या यों कहिए कि इसके सुनने से मेरे जीवन में एक नया मोड़ आ गया।

अगले दिन सवेरे मैं, भाई सोहनलाल व सूधनसिंह सोनी जी श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ गए। वे लाला धनराज के यहाँ ऊपर कमरे पर ठहरे हुए थे। मैं इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ था कि साधु-महात्माओं से किस प्रकार मिलना

चाहिए। बिना सूचना दिए वैसे ही दरवाजा खोल दिया। श्री स्वामी जी महाराज इस समय व्यायाम कर रहे थे। उन्होंने फरमाया—जरा ठहरो मैं अभी दरवाजा खोलता हूँ। उनकी वाणी बड़ी सरस व मधुर थी। प्रेम से सनी हुई थी। उसका मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने प्रेमपूर्वक हमें अपने पास बिठलाया व प्रत्येक का नाम व काम-धन्धे आदि के विषय में पूछा। हमने अपना सब हाल कह सुनाया।

इसके पश्चात् स्वामी जी महाराज छुडानी पधार गए। अगले दिन हम भी छुडानी पहुँचे। स्वामी जी महाराज उस समय ग्रन्थ साहब का अध्ययन कर रहे थे। वह तो उन्होंने रख दिया और हम से बातें करने लगे। स्वामी जी महाराज ने गायत्री मन्त्र के विषय में पूछा सो मैंने व सोहन लाल ने तो हाँ में उत्तर दे दिया। किन्तु सूधनसिंह ने कहा कि मैं नहीं जानता। जिस पर स्वामी जी ने अपने हाथ से गायत्री मन्त्र लिख कर दिया और सूधनसिंह से कहा कि इसे याद करना। सोहनलाल से याद करवाने को कहा गया। सोहनलाल ने गायत्री मन्त्र अपने पास रख लिया इस पर उन दोनों में कुछ मनमुटाव हो गया और बोलना तक छोड़ दिया। अस्तु।

बरहाना गाँव को प्रस्थान—इससे अगले दिन श्री जगदेव शास्त्री सिद्धान्ती जी श्री स्वामी जी महाराज को अपने गाँव बरहाना ले गये। इस दिन बड़े जोर की वर्षा हो रही थी। हमारी मंडली भी सर्दी व वर्षा का विचार न करती हुई बरहाना पहुँच गई। वहाँ भी स्वामी जी महाराज का भाषण सुना—भाषण का विषय राम नाम की महिमा था। स्वामी जी महाराज ने फरमाया कि भाई जमींदारो राम नाम लिया करो। और यह काम-काज करते समय हर वक्त याद रखो। तब एक बूढ़े चौधरी ने प्रश्न किया कि महाराज हम तो हर समय अशुद्ध रहते हैं। नहाने-धोने की फुर्सत मिलती नहीं। फिर जैसा कि भागवत पुराण में लिखा है कि एक आदमी ने मलोत्सर्ग करते समय राम नाम ले लिया था तो उसे शूकर की योनी मिली। जिस पर स्वामी जी ने फरमाया कि आप सदैव खेतों में बीज बोते हो और वे दाने उलटे-सीधे पड़ते हैं किन्तु सब ऊपर को निकलते हैं। तुलसीदास जी का दोहा बतलाया—

तुलसी मेरे राम ने रीझ भजो या खीझ,
भौम पड़ा जामे सभी उलटा सीधा बीज।

अतः काम करते हुए भी राम नाम का जाप किया करो। भाषण समाप्त होने पर श्री स्वामी जी ने हमें देख लिया और अपने पास बुलाकर कहा। अब तुम कहां सोओगे। मैंने कहा हम तो जमींदार हैं इसी जगह चौपाल में बिछे हुए पलंग व तख्तों पर सो जाएंगे। फिर स्वामी जी ने सिद्धान्ती जी को बुलाया और कहा कि आप इन लड़कों को भोजन कराओ और इनके सोने आदि की व्यवस्था करो।

तत्पश्चात् मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि ज्वालापुर (हरिद्वार) में श्री स्वामी जी के कर कमलों द्वारा एक नए भवन का उद्घाटनोत्सव मनाया जा रहा है। मैंने वहां जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

भाड़े की कठिन समस्या—दर्शनों की तो उत्कट इच्छा थी किन्तु मेरे पास उस समय केवल १ रु० ६ आ० थे। मैंने अपनी माता जी से कहा कि मुझे कुछ दाम दे दो तो उसके पास भी केवल एक रुपया मिला। मैंने अपनी एक पड़ोसन ताई से दो रुपये उधार मांगें किन्तु उसने कहा कि भाई मैं रुपये तो तुझे दे दूं किन्तु तू वापिस नहीं

देगा। मेरी भयंकर दरिद्रता को देखकर उसे अपनी पूँजी डूब जाने का भय था। मैंने उसे विश्वास दिलाया कि मैं तेरे रुपये जरूर लौटा दूँगा तब मैं चार रुपये नौ आने लेकर हरिद्वार गया और मन में सोचता गया कि जहां चाह वहां राह।

जब मैं ज्वालापुर पहुँचा उस समय स्वामी जी महाराज एक बड़े पंडाल में भाषण कर रहे थे। मैं भी दूर एक स्थान पर बैठ गया। श्री स्वामी जी की तीव्र दृष्टि मुझ पर पड़ी और तुरन्त अपनी ओर आने का संकेत किया। मैं आज्ञानुसार उनके कमरे की ओर गया उनके पीछे पीछे अनेक श्रद्धालु भक्त जा रहे थे। किन्तु उन्होंने क्रम पूर्वक सबको विदा कर दिया और मुझे अन्दर ले गए। और कहा कि तू इस तरह क्यों फिरता है। तेरी आर्थिक अवस्था कमजोर है। किराया आदि पास नहीं। इस तरह मत फिरा करो। मैंने नम्रतापूर्वक कहा कि महाराज जी मैं तो अब आप के साथ ही रहा करूँगा। आपका पीछा नहीं छोड़ूंगा। तब महाराज जी बोले मैं ही दूसरों के घर पर ठहरता हूँ तुझे कैसे साथ रखूं। तो फिर मैंने कहा कि महाराज यदि एक वचन दो कि मैं छारा वर्ष भर में एक बार अवश्य आया करूँगा तो मैं आपके पीछे फिरना छोड़ दूंगा। इस पर स्वामी जी ने फरमाया कि अच्छा मैं साल में एक बार अवश्य छारा आया करूँगा। तदनुसार स्वामी जी प्रति वर्ष छारा आने लगे।

उस समय सांपला से छारा पक्की सड़क नहीं थी। सड़क खराब थी। मिट्टी धूल खूब उड़ती थी। किन्तु अपनी प्रतिज्ञानुसार स्वामी जी महाराज प्रति वर्ष छारा आते रहे। एक बार स्वामी जी महाराज 'भक्ति प्रकाश' की १०, १२ पुस्तकें लेकर छारा पधारे। पं० टेकराम जी भापदौड़ा निवासी, पं० जयलाल सूबेदार, पं० दीपराम सूबेदार, पं० मुसद्दीलाल, चौ० रामगोपाल, महाशय गोरधनदास व मुझे इस प्रकार आठ सात पुस्तकें दीं और नित्य प्रति पाठ करने को कहा—

'भक्ति प्रकाश' से प्रकाश व प्रेरणा—'भक्ति प्रकाश' के पढ़ने से मुझे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ और मुझे 'भक्ति प्रकाश' में सब कुछ दिखलाई देने लगा। इस समय १६३० का महात्मा गांधी द्वारा चलाया गया सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। विचार पैदा हुआ कि देश सेवा के लिए इसमें अवश्य भाग लेना चाहिए। मुझे यह प्रेरणा 'भक्ति प्रकाश' से प्राप्त हुई। अतः मैं, सोहनलाल व महाशय गोरधनदास सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल हुए और हमें एक एक साल साधारण कैद की सजा हुई। इस वर्ष के अन्दर हमें भक्ति प्रकाश के पढ़ने का पर्याप्त समय मिला और हमने इस समय को भजन, पाठ, ईश्वर स्तुति हवन आदि में बिता कर इसका सदुपयोग किया। जेल अधिकारी हमारे नित्य नैमित्तिक कर्मों को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ और हमारे लिए एक पृथक् छप्पर का प्रबन्ध करवा दिया।

जेल यात्रा से लौटनें पर मैंने कोयले का व्यापार आरम्भ किया और झरिया आदि स्थानों से कोयला लाकर काम करता रहा। परमात्मा की कृपा और श्री स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से मुझे आशातीत लाभ हुआ। क्योंकि मैं दरिद्रता का रुलाया हुआ था और उससे पिंड छुड़ाने की मेरी इच्छा थी अतः स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से मेरी धनोपार्जन की इच्छा पूरी होने लगी। मेरी श्रद्धा और विश्वास भी श्री स्वामी जी महाराज पर उत्तरोत्तर बढ़ते गए।

शेष पुनः।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

(एक विद्यार्थी)

पूज्य स्वामी जी महाराज के अगाध और अपार साहित्य का सम्बन्ध वेदों से लेकर सन्तवाणी और भक्तवाणी तक है। किन्तु उनके कुछ ग्रन्थों का मूल आधार रामायण और गीता हैं। रामायणों में से महाराज जी ने वाल्मीकीय रामायण का ही मुख्यतया आश्रय लिया है—"रामायणसार" और "रामायण पर ऐतिहासिक दृष्टि" दोनों का आधार वाल्मीकीय रामायण ही है। यद्यपि "रामायणसार" के परिशिष्ट में नाम महिमा, भक्ति महत्त्व, रामकृपा और श्री रामोपदेश षट्क में महाराज जी ने गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के रामचरित मानस में भी दोहा चौपाइयों का सुन्दर संग्रह किया है, तथापि श्रीराम चरित्र के अंश में उनकी लेखनी ने महामुनि वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है। वाल्मीकीय रामायण का सक्षेप में सार लिख कर सर्व साधारण के लिये महाराज जी ने उस आदिकाव्य की विशेषताएँ सुलभ और सुगम कर दी हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता पर भी महाराज जी ने भाषा भाष्य लिखा है, इसके अतिरिक्त 'स्थितप्रज्ञ के लक्षण' और 'भक्ति और भक्त के लक्षण' नाम से दो लघु पुस्तिकाएँ भी महाराज जी ने श्रीमद्-भगवद् गीता में से ही श्लोक संग्रह करके लिखी हैं। 'स्थितप्रज्ञके लक्षण' के प्राक्कथन में महाराज जी लिखते हैं—

"श्री मद्भगवद्गीता सारे संसार के सहित्य में एक सर्वसुन्दर ग्रन्थ है। इसका तत्त्वज्ञान निरुपम और उच्चतम है। इसका अध्यात्मवाद सर्वश्रेष्ठ तथा व्यवहार में वर्तने योग्य है। ऐसे परम पावन ग्रन्थ में एक भाग है, जिसमें स्थिरमति मनुष्य के लक्षण वर्णन किये गये हैं, जो प्रत्येक कार्यक्षेत्र में कार्य करने वाले जन के लिये स्मरण धारण, आचरण में लाने और जीवन में बसाने योग्य हैं तथा परम उपयोगी हैं, वही भाग इस लघु पुस्तिका में प्रकाशित किया गया है। प्रत्येक नरनारी को चाहिए कि इस भाग के श्लोकों को मननपूर्व कण्ठाग्र करके प्रतिदिन उनका पावन पाठ किया करे।

महात्मा गान्धी जी अपनी दोनों काल की प्रार्थना में से सायंकाल की प्रार्थना में इन्हीं स्थिरबुद्धि के लक्षणों के श्लोकों का पाठ किया करते थे। जब मुझे पहली बार उनकी प्रार्थना में बैठने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ, तो इन श्लोकों को सुनने के पश्चात् मेरे मन में यह विचार स्फुरित हुआ कि महात्मा जी एक बड़ी शक्ति-शालिनी बृटिश सरकार से अहिंसात्मक असहयोग समर लड़ रहे हैं और आप इस संग्राम की सेना के प्रधान संचालक तथा सेनापति हैं। इन्होंने जो भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के अन्तिम ये उन्नीस श्लोक अपनी प्रार्थना में रक्खे हैं, जिनमें स्थिरमति मनुष्य के लक्षण वर्णित हैं, इसका यही प्रयोजन है कि सैनिक जन इस निराले समर में स्थिरमति बने रहें। वे दुःख से पीड़ा से, बन्धन से, मारताड़ से और निरादर की मानस वेदना से व्याकुल न हो उठें, जी न छोड़ बैठें, पथभ्रष्ट न हो जायें और कायिक बल का उपयोग करने पर न उतर आयें-स्वर्गीय महात्माजी का सत्याग्रह संग्राम जिस सफलता से चलता रहा और जो अशातीत विजय

उस प्रधान सेनापति को प्राप्त हुई वह संसार में सदा स्मरण रहेगी।

प्रत्येक व्यक्ति जीवन संग्राम लड़ रहा है, संघर्ष के क्षेत्र में विचर रहा है, उसके भीतर भी भय, उद्वेग, लोभ, लालसा-क्रोध-कामना-वैर-विरोध, स्वार्थ-कायरता और अकर्मण्यता आदि के तरंग उठते रहते हैं, जो उसकी शान्ति को भंग कर देते हैं। पाप कर्मों की प्रवृत्ति, पापवासनाएँ, दुर्गुण तथा दुष्ट संस्कार, पिशाचरूप बनकर पीछे पड़े रहते हैं, जो दुर्बल प्राणी को सबल, समर्थ तथा सफल नहीं बनने देते। ऐसे तथा अन्य अनेक अन्तरंग, बहिरंग वैरियों को विजय करना स्थितप्रज्ञ बने बिना नहीं हो सकता। अपनी धारणा पर, ध्येय पर, धर्मपर, कर्तव्य कर्म पर, प्रणप्रतिज्ञा पर, तथा जाति समाज की सेवा पर सुदृढ़ बने रहना भी स्थिरबुद्धि बनने से ही बन सकता है। इस लिये प्रत्येक कर्मशील और स्वकल्याण के इच्छुक जन को स्थिरमति मनुष्य के लक्षणों के सब श्लोक हृदयंगम अवश्य कर लेने चाहिएँ। स्थिरबुद्धि बन जाने से जहाँ जगत् का जीवन उच्च बन जाता है, वहाँ भगवान् के वचनों में, स्थिरबुद्धिजन ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त होकर रहता है, उसमें ब्रह्मरूपता समा जाती है।"

इन शब्दों में श्रीमद्भगवद्गीता के प्रति पूज्य स्वामी जी महाराज की जिस निष्ठा और आस्था का दर्शन होता है, वह प्रत्येक साधक के लिये अनुकरणीय है, विस्मरणीय है।

"स्थितप्रज्ञ के लक्षण" इस लघु पुस्तिका में श्री मद्भगवद् गीता के द्वितीय अध्याय के ५२ वें श्लोक से ७२ वें श्लोक तक का संग्रह किया है। प्रत्येक श्लोक पर अन्वयक्रम से अङ्क लगा दिये हैं फिर अन्वयानुसार प्रत्येक शब्द का अर्थ लिखा है, और प्रायः प्रत्येक श्लोक का शब्दार्थ लिखकर भावार्थ भी लिखा है। भावार्थ में बहुत सी विवेचना-पूर्ण बातें लिख कर महाराज जी ने इस लघु पुस्तिका को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है।

श्रीमद्भगवद गीता के आधार पर दूसरी लघुपुस्तिका है "भक्ति और भक्त के लक्षण"। इसके प्राक्कथन में महाराजजी ने भक्ति की आवश्यकता पर बहुत ही प्रभाव पूर्ण प्रकाश डाला है। महाराजजी लिखते हैं—

"धर्म में भक्तिभाव, एक बड़ा उत्तम अङ्ग है। इसके बिना धर्मवाद, रस, सार और सौन्दर्य रहित मन्तव्यों का कोरा कलेवर ही रह जाता है आस्तिक भावना के भव्य भवन की सुदृढ़ नींव भक्ति ही है। आत्मवाद के महामन्दिर में प्रवेश करने के इच्छुक जन के लिए एक मात्र मार्ग भगवती भक्ति ही कही गई है। देहगत चेतन का सर्वगत परम चैतन्य से सम्बन्ध जोड़ने का सुदृढ़ सूत्र भक्तिमार्ग है। भक्ति भाव वह स्वादुतम रस है, जिसके आस्वादान कर लेने पर मनुष्य को मतों के अन्य वादविवाद निरे नीरस लगने लगते हैं।

श्री भगवान कृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में धर्म के सब अङ्गों के साथ जीवन को उच्च बनाने के सब साधनों के साथ तथा कर्म बन्धन और पाप पाश काटने के सब उपायों के साथ भक्ति को प्रधानता दी है। श्री भगवान् के श्री मुख वाक्यों से ही भगवती भक्ति के प्रकार और भागवत भक्त के लक्षण इस पुस्तिका में वर्णित किये गए है। भगवान श्री कृष्ण द्वारा प्रदर्शित भक्त के लक्षण कितने उत्तम हैं, मननशील मनुष्य के मन में यह बात सुगमता से समा सकती है। किसी से द्वेष न करना, दीन दुखीजन पर करुणावान् होना, शत्रु तथा मित्र में समदृष्टि पन और परार्थ, अपने

निवास स्थान की ममता तक का त्याग, ये ऐसे भक्त लक्षण हैं जो संसार के साहित्य में अपनी उपमा आप ही है। श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय के श्लोकों का ही इसमें स्पष्टीकरण है। भगवद्भक्तों को बड़े भाव पूर्वक इसका मनन, पाठ और आराधन करना चाहिए।"

इन पंक्तियों में भक्ति द्वारा धर्म में, साहित्य में और जीवन में सरसता लाने का समर्थन करते हुए महाराज जी ने उन धर्मवादों या मतों के वादविवादों की नीरसता का स्पष्टीकरण कर दिया है, जहां भक्तिभाव जैसी मधुर भावना का अभाव है, या उसकी न्यूनता है।

यद्यपि महाराज जी ने महात्मा गान्धी जी की सायं प्रार्थना में स्थितप्रज्ञ के लक्षणों के १९ श्लोक सुनकर एक विचार स्फूर्ति प्राप्त की थी, किन्तु जब वे 'स्थितप्रज्ञ के लक्षण' लिखने बैठे तब एक आचार्य की भांति उन्होंने विषय की व्याप्ति का विचार किया और यह पाया कि स्थितप्रज्ञ के लक्षण १९ श्लोकों में नहीं अपितु २१ श्लोकों में हैं। अर्जुन के प्रश्न का मूल वे दो श्लोक भी महाराज जी ने स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में संग्रह कर लिए जिनके द्वारा एक विशेष जिज्ञासा उत्पन्न की गई थी।

श्री भगवान् ने कहा——

यदा[१] ते[२] मोहकलिलं[४] बुद्धि[३] र्व्यतितरिष्यति[५]।
तदा[६] गन्तासि[११] निर्वेदं[१०] श्रोतव्यस्य[७] श्रुतस्य[९] च[८] ॥१॥

जिस समय[१] तेरी[२] बुद्धि[३] मोहमयी[४] दलदल को सर्वथा तर जाएगी[५]; तब[६] (तू) सुनने योग्य[७] के और[८] सुने हुए के[९] वैराग्य--विशेष ज्ञान[१०] को प्राप्त होगा[११]।

जब तक मोह से, आसक्ति से बुद्धि पार न पा जाए तब तक धर्म कर्म के, विवेक विचार के और परमार्थ तत्त्वादि के सुनने योग्य और सुने हुए वाक्यों के विशेष ज्ञान को—यथार्थ मर्म को—समझना कठिन है। इसलिए तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने के अर्थ वस्तुओं के मोह की गहरी ममता को पार करना आवश्यक है। जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी ने "योगानुष्ठान से उत्पन्न सत्त्व शुद्धि से सम्पन्न बुद्धि कब प्राप्त होगी? अब यह बताते हैं" इस अवतरणि का से श्लोक की व्याख्या प्रारम्भ की है और लिखा है——"जिस समय तेरी बुद्धि उस अविवेकरूपी कालुष्य को लाँघ जाएगी शुद्धभाव को प्राप्त कर लेगी जिसके कारण आत्मा और अनात्म के ज्ञान को मलिन करके अन्तःकरण विषय की ओर प्रवृत्त होता है, उस समय तुझे सुनने योग्य और सुने हुए सभी विषय निष्फल प्रतीत होंगे।"

श्री आनन्द गिरि जी ने शांकर भाष्य की पद्धति का ही अनुसरण करते हुए लिखा है—— "जब सुनने योग्य और सुने हुए, देखने योग्य और देखे हुए के प्रति कोई अभिलाषा ही न रहेगी तब पूर्वोक्त प्रकार की बुद्धि उत्पन्न नहीं होगी।" इस शंका का समाधान करते हैं कि जिस समय विवेक-परिपाक की अवस्था प्राप्त हो जाने पर बुद्धि अविवेक रूपी कालुष्य को लाँघ जाएगी—— जिस कालुष्य का परिणाम बहुत बुरा होता है जो कालुष्य अनर्थरूप है——जिसके कारण आत्मा और अनात्म के ज्ञान को मलिन करके अन्तःकरण विषय की ओर प्रवृत्त होता है। उस विवेक-परिपाक की अवस्था प्राप्त हो जाने पर बुद्धि को शुद्धि कर देने वाले विवेक की प्राप्ति से वैराग्य की प्राप्ति होगी। सुनने योग्य और सुने हुए——

अध्यात्म शास्त्र के अतिरिक्त शास्त्रों से वैराग्य की प्राप्ति हो जाएगी क्योंकि पूर्वोक्त विवेक की प्राप्ति हो जाने पर सभी अनात्म विषयों में निष्फलता प्रतीत होने लगती है।

आचार्य नीलकण्ठ जी ने इस श्लोक पर व्याख्या करते हुए लिखा है कि "वे बुद्धि युक्त मनीषी कब होते हैं? इसका उत्तर देते हैं कि जब इष्ट-वियोग और अनिष्ट-संयोग के सन्ताप से उत्पन्न मन की विचित्तता रूपी कालुष्य को बुद्धि लाँघ जाएगी और प्रसन्न-निर्मल हो जाएगी तब सुनने योग्य शास्त्र भाग से और सुने हुए शास्त्र भाग से वैराग्य को प्राप्त हो जाओगे। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक बुद्धि मलिन रहती है तब तक बार-बार समझी हुई भी शास्त्र की बात मन में स्फुरित नहीं होती उस समय सुने हुए और सुनने योग्य दोनों ही शास्त्र निष्फल रहते हैं। ऐसे ही जब बुद्धि शुद्ध हो जाती है तब शास्त्र की बातें स्वयं ही बुद्धि में स्फुरित होने लगती हैं तब भी सुनने योग्य और सुने हुए शास्त्र भागों से वैराग्य होना उचित ही है। क्योंकि शुद्ध, निर्मल या प्रसन्न बुद्धि शीघ्र ही एकाग्र हो जाती है।

आचार्य मधुसूदन सरस्वती जी ने इस श्लोक पर व्याख्या की है कि अर्जुन ने प्रश्न किया कि कर्मानुष्ठान करते-करते मेरी बुद्धि कब शुद्ध होगी? उस पर भगवान् कहते हैं कि इस विषय में कोई समय का नियम नहीं है कि इतने समय तक कर्मानुष्ठान करने से बुद्धि शुद्ध हो जाती है। अपितु जिस समय तेरी बुद्धि—तेरा अन्तः-करण-अविवेक रूपी कालुष्य को—"यह मैं हूँ, यह मेरा है" इत्यादि अज्ञान के अतिगहन विलास को तर जाएगी, तमोगुण और रजोगुण छोड़कर शुद्धभाव को प्राप्त हो जाएगी तब तू सुनने योग्य और सुने हुए कर्म फलों से निर्वेद-तृष्णाशून्य अवस्था को प्राप्त हो जाएगा। इस निर्वेद या तृष्णाशून्य अवस्था द्वारा ही बुद्धि की शुद्धि जानी जाएगी।

भाष्योत्कर्ष दीपिकाकार लिखते हैं कि अर्जुन की जिज्ञासा है कि मैं सांख्य बुद्धि को कब प्राप्त होऊँगा जिसकी प्राप्ति के लिए मुझे कर्म का उपदेश किया जा रहा है? इस पर भगवान् कहते हैं—जिस अवस्था में तेरी बुद्धि अविवेक रूपी कालुष्य को पार कर जाएगी, उस अवस्था में तू सुनने योग्य और सुने हुए से वैराग्य को प्राप्त होगा। अर्थात् जब तेरी बुद्धि चित्त की अशुद्धि के कारण उत्पन्न अविवेकरूपी कालुष्य को तर जाएगी तब तू सुनने योग्य और सुने हुए कर्म फलों से वैराग्य को प्राप्त होगा।

श्री श्रीधराचार्य जी इस श्लोक पर व्याख्या करते हैं कि अर्जुन के मन में जिज्ञासा है कि मैं उस अनामय पद को कब प्राप्त करूँगा? इसका उत्तर देते हैं कि देहादि में आत्मबुद्धि ही मोह है, उस मोहरूपी दुर्गम स्थान को परमात्मा की आराधना करते-करते उसकी कृपा से जब तेरी बुद्धि तर जाएगी तब सुनने योग्य और सुने हुए पदार्थों से वैराग्य को प्राप्त हो जाएगे। उनकी तेरे लिए उपादेयता न रहेगी अतः तू उनके विषय में जिज्ञासा भी न करेगा।

श्री अभिनवगुप्तपादाचार्य जी इस श्लोक पर लिखते हैं कि जब योग बुद्धि प्राप्त होगी तब तुझे स्पष्ट ही ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। तू सुनने योग्य और सुने हुए दोनों प्रकार के आगमों से निर्वेद भाव को प्राप्त हो जाएगा। इसका यह

तात्पर्य है कि अविद्या के मद में पड़े हुए प्रमाता को अनुग्रह करने वाले शास्त्र के श्रवण करने से जो संस्कार प्राप्त होते हैं उनके बहकावे की यह महिमा है कि तुम उत्थान और असमय में कुल-क्षय आदि दोष देखने लगे हो, किन्तु तुम्हारा यह भ्रम उन शास्त्रों के प्रति बहुमान की भावना नष्ट हो जाने पर दूर हो जाएगा।

इस प्रकार अनेक आचार्यों ने अनेक रूपों में इस श्लोक की व्याख्या की है किन्तु सभी ने निर्वेद का 'वैराग्य' ही अर्थ लिखा है। महाराज जी ने भी पूर्वाचार्यों के सम्मान को सुरक्षित रखते हुए वैराग्य अर्थ को स्वीकार करते हुए भी एक विशेष बात लिखी है जो उनकी मौलिक सूझ है, वैराग्य का कारण क्या होगा ? निर्वेद--विशेषज्ञान और मोह का रूप क्या होगा ? गहरी ममता। महाराज जी ने इस श्लोक का जो भावार्थ लिखा है वह मनन करने योग्य है--जब तक मोह से आसक्ति से बुद्धि पार न जाए तब तक धर्म कर्म के, विवेक विचार के, और परमार्थतत्त्वादि के सुनने योग्य और सुने हुए वाक्यों के विशेष ज्ञान को यथार्थ मर्म को समझना कठिन है। "शोक रागाद्याविष्टानां नोपदेशगुणाः। अजवत्। मुनिवच्च।" इत्यादि सांख्य सूत्रों में महामुनि कपिल ने यही बात कही है कि जिनका मन शोक या राग से आविष्ट रहता है उनपर उपदेशों का का प्रभाव नहीं पड़ता जैसे राजा अज पर नहीं पड़ा क्योंकि वे महारानी इन्दुमती के शोक से से व्याकुल थे और सौभरि मुनि पर नहीं पड़ा क्योंकि वे सांसारिक सुखों के प्रति राग की आसक्ति से आविष्ट थे। निर्-निःशेष, वेद-ज्ञान, निर्वेद-निःशेष ज्ञान और विशेष ज्ञान यह अर्थ सर्वथा नवीन है और संगत है। शास्त्र संगत भी है और बुद्धि संगत भी। इसी प्रकार महाराज जी की व्याख्याओं की विशेषताओं पर विद्वान पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करेंगे।

साधकों से प्रार्थना

हमारी उत्कट इच्छा थी कि सत्य साहित्य के 'आपबीती' और 'प्रश्नोत्तर' वाले स्तम्भों में अधिक सामग्री प्रकाशित हो, किन्तु साधकों के जितने सहयोग की आशा इस दशा में थी उतना प्राप्त न होने के कारण हम दोनों स्तम्भों का मन चाहे ढंग पर सम्पादन नहीं कर पा रहे हैं। आप सब से हमारी प्रार्थना है कि पूज्य स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आने के जो संस्मरण आप प्रकाशन योग्य समझें। उन्हें आवश्यमेव लिखकर भेज दें, तथा साधना और साहित्य के सम्बन्ध में जो प्रश्न आपके मन में स्फुरित हों वे भी अवश्य लिख भेजें। महाराज जी के समर्थ साधकों और महान साहित्य के आधार पर उन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयत्न किया जाएगा।

सम्पादक

'सत्य साहित्य' के उद्देश्य और नियम

उद्देश्य—

१. 'सत्य साहित्य' का मुख्य उद्देश्य श्री स्वामी सत्यानन्दजी महाराज के लोक-कल्याणकारी साहित्य का व्याख्यात्मक शैली से प्रकाशन करना है।

२. 'सत्य साहित्य' का दूसरा उद्देश्य है उस साधना पद्धति का प्रचार और प्रसार करना जो सच्ची और सरल है, वेद शास्त्र सम्मत है और भावुक साधकों के अनुभव में आ चुकी है।

नियम—

१. 'सत्य साहित्य' प्रत्येक अंग्रेजी महीने की १३ तारीख को प्रकाशित होगा।

२. 'सत्य साहित्य' के प्रत्येक अंक का मूल्य केवल २५ नये पैसे होगा।

३. 'सत्य साहित्य' में स्वामी श्री सत्यानन्द जी महाराज के प्रकाशित या अप्रकाशित साहित्य से सम्बन्धित विचार प्रकाशित होंगे।

४. 'सत्य साहित्य' के 'आपबीती' विभाग में महाराज के सम्पर्क या परिचय में आए हुए साधकों के अपने अनुभव प्रकाशित होंगे।

५. 'सत्य साहित्य' के 'पत्र और उत्तर' विभाग में साधकों के पत्र और उनके उत्तर महाराज के साहित्य के आधार पर प्रकाशित होंगे।

६. 'सत्य साहित्य' में महाराज तथा उनके साहित्य और सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखने वाली कविताएँ, गीत, आदि भी प्रकाशित हो सकेंगे।

७. 'सत्य साहित्य' में प्रकाशनार्थ आई हुई सामग्री को शीघ्र या विलम्ब से प्रकाशित करना अथवा प्रकाशित न करना सम्पादक के अधीन होगा। इसके योग्य या अयोग्य होने के विषय में "सत्य साहित्य" से कोई निर्देश देना आवश्यक समझा जाएगा तो दिया जाएगा।

८. आवश्यकतानुसार नियमों में परिवर्तन, परिवर्धन हो सकेगा, किन्तु ध्येय वही रहेगा जो इन नियमों से प्रकट है।

श्री स्वामी सत्यानन्दजी महाराज के प्रकाशित ग्रन्थ

		रु० नये पैसे
१.	एकादशोपनिषत्संग्रह	मूल्य ३ — ३७
२.	श्रीमद्भगवद्गीता	१ — ०
३.	रामायणसार	२ — ५०
४.	भक्तिप्रकाश	२ — ७५
५.	रामायण पर एक ऐतिहासिक दृष्टि	० — ३१
६.	अमृतवाणी	
७.	प्रार्थना और उसका प्रभाव	० — ५०
८.	भजन संग्रह	
९.	भक्ति और भक्त के लक्षण	
१०.	स्थित प्रज्ञ के लक्षण	० — १२
११.	उपासक का आन्तरिक जीवन	० — १२

प्राप्ति स्थान—

भगवानदास एण्ड कम्पनी,

कश्मीरी गेट, दिल्ली

मुद्रक तथा प्रकाशक श्री भगवानदास कत्याल द्वारा एलबियन प्रेस,
कश्मीरी गेट, दिल्ली में मुद्रित ।